गुरुकुल विश्वविद्यालय का इतिहास

गुरुकुल की कल्पना

भारत के इतिहास में उन्नीसवीं सदी में एक धार्मिक सुधारणा का प्रारम्भ हुआ। जिसके प्रधान नेता ऋषि दयानन्द थे। सत्य सनातन आर्यधर्म में जो अनेक विकार उत्पन्न हो गये थे, ऋषि दयानन्द ने उनके विरुद्ध आवाज़ उठाई। और वेदों के उस धर्म को जनता के समुख उपस्थित किया, ... मध्य और अन्त-सर्वत्र सत्य और पूर्ण है। पर ऋषि ... केवल धर्म सुधारक ही नहीं थे। वे युगप्रवर्तक ऋषि ... ने शिक्षा, राजनीति, समाज संगठन आदि सब क्षेत्रों ... चारों का प्रतिपादन किया। भारत को विदेशी ... से मुक्त होकर 'स्वराज्य' प्राप्त करना चाहिये, इस बात को सब से पहले दयानन्द ने ही जनता के सम्मुख रक्खा। भारत में शासन का क्या रूप हो, समाज का संगठन किस प्रकार से हो, और यह देश किस तरह अपने प्राचीन गौरव का

उद्धार कर संसार का शिरोमणि बने, इन सब बातों के सम्बन्ध
में ऋषि दयानन्द ने अपने निश्चित विचार 'सत्यार्थ प्रकाश
आदि ग्रन्थों में प्रगट किये। ये विचार न केवल भारत
लिये उपयोगी हैं। पर सम्पूर्ण संसार को अशान्ति औ
अव्यवस्था के मार्ग से हटा कर सुख समृद्धि के पथ पर ले ज
सकते हैं। इन्हीं विचारों और आदर्शों को क्रिया में परिण
करने के लिये ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थाप
की थी।

अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा के क्षेत्र में भी आ
समाज के विशेष आदर्श हैं। ऋषि दयानन्द ने अप
समय में प्रचलित शिक्षापद्धति में अनेक दोष अनुभ
कर एक नवीन शिक्षाप्रणाली का प्रतिपादन किया थ
ऋषि ने इसे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का नाम दिया
उस समय भारत में शिक्षा की मुख्यतया दो प्रणालि
प्रचलित थीं। एक भारत के ब्रिटिश शासकों
प्रारम्भ की गई थी, और दूसरी पुरानी परम्परा
अनुसार पण्डित-मण्डली में प्रचलित थी। सरकार
प्रचलित प्रणाली भारत के राष्ट्रीय तथा धार्मिक आ
के प्रतिकूल थी। उस में भारत की भाषा, धर्म, सभ्
साहित्य, तथा संस्कृति की सर्वथा उपेक्षा की गई थी। प
मण्डली की शिक्षा-पद्धति समय की आवश्यकताओं को
नहीं करती थी। उस में वर्त्तमान युग के ज्ञान-विज्ञान

कोई स्थान प्राप्त न था। चरित्र निर्माण के लिये ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या आदि जिन आदर्शों का पालन अवश्य है, उनका दोनों प्रणालियों में कोई महत्त्व न था। ऋषि दयानन्द ने अनुभव किया कि भारत में प्राचीन गुरुकुल प्रणाली का पुनरुद्धार कर इन दोषों को दूर किया जाना चाहिये। इसी लिये उन्होंने शिक्षा के निम्न लिखित आदर्श और सिद्धान्त प्रतिपादित किये:—

(१) यह राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।

(२) लड़कों और लड़कियों के गुरुकुल पृथक् पृथक् हों।

(३) विद्यार्थी लोग गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करें। २५ वर्ष से पूर्व बालक का और१६ वर्ष से पूर्व कन्या का विवाह न हो सके।

(४) गुरुकुल में सब को तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जावें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हों चाहे दरिद्र के सन्तान हों—सब के साथ एक समान व्यवहार किया जावे।

(५) गुरुकुलों में गुरु और शिष्य पिता पुत्र के समान रहें।

(६) विद्या पढ़ने के स्थान गुरुकुल शहर व ग्रामों से दूर एकान्त में हों।

(७) शिक्षा में वेद वेदाङ्ग तथा सत्य शास्त्रों को प्रमुख स्थान दिया जाय, परन्तु साथ ही राजविद्या, सङ्गीत, नृत्य, शिल्पविद्या, गणित, ज्योतिष, भूगोल, खगोल, भूगर्भविद्या, यन्त्रकला, हस्तक्रिया, चिकित्सा शास्त्र आदि का भी यथोचित रूप से अभ्यास कराया जावे।

निःसन्देह ऋषि दयानन्द के ये विचार शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार थे। आर्यसमाज के सम्मुख शुरु से ही इन्हें क्रिया में परिणत करने की समस्या उपस्थित थी। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना से पूर्व भी आर्यसमाज ने शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रयत्न किये, उनमें ऋषि दयानन्द के इन विचारों को आदर्श के रूप में सम्मुख रखा। जब डी०ए०वी० कालेज की स्थापना की गई, तो उस के साथ ही ब्रह्मचर्याश्रम खोलने और वेद तथा सत्य शास्त्रों को प्रमुख स्थान देने का विचार किया गया। डी० ए० वी० कालेज के पहले बोर्डिंग हाउस को एक आदर्श ब्रह्मचर्याश्रम के रूप में परिवर्तित करने का संकल्प किया गया था। उस समय इस बोर्डिंग हाउस के सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियां "आर्य पत्रिका" में लिखी गई थीं—

'इस बोर्डिंग हाउस के नियम बिल्कुल पूर्ण हैं। इस

में नियन्त्रण का पूरा प्रबन्ध किया गया है और इस बात की व्यवस्था की गई है कि उन बालकों को जो उस में प्रविष्ट हों इस प्रकार रखा जावे, जैसे घरों में माता पिता के पास बच्चे रहते हैं।' (आर्य पत्रिका, १६ अप्रैल सन् १८८७)

डी० ए० वी० कालेज के कोर्स के सम्बन्ध में निम्न लिखित आदर्श निश्चित किये गयेथे:—

(१) हिन्दुसाहित्य को उन्नत और प्रोत्साहित करना।

(२) प्राचीन संस्कृत साहित्य और वेदों के अध्ययन को प्रचलित तथा प्रोत्साहित करना।

(आर्यपत्रिका, २४ अगस्त सन् १८८६)

यह स्पष्ट है कि डी० ए० वी० कालेज की स्थापना करते समय ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी आदर्श उसके संस्थापकों के सम्मुख थे। पर डी० ए० वी० कालेज उन आदर्शों पर दृढ़ नहीं रह सका, समय का प्रवाह उसे दूसरी ओर ले गया।

गुरुकुल के लिये आन्दोलन

पर डी० ए० वी० कालेज की असफलता से ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों पर आर्यसमाज की आस्था कम नहीं हुई। कुछ ही समय बाद आर्यसमाज में

एक नये आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। कुछ लोगों के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऋषि दयानन्द के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों के अनुसार गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का पुनरुद्धार करना चाहिए। महात्मा मुन्शीराम इस आन्दोलन के प्रवर्तक तथा प्रमुख नेता थे। ऋषि दयानन्द ने आदर्श शिक्षा का जो मार्ग दिखाया था, महात्मा मुन्शीराम उसके पहिले पथिक बने। आज से ३५ वर्ष पूर्व गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली का पुनरुद्धार एक असम्भव कल्पना, एक अक्रियात्मिक आदर्श समझा जाता था। महात्मा मुन्शीराम के प्रयत्न से यह असम्भव कल्पना सम्भव हो गई और शिक्षा के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति हुई।

गुरुकुल के लिये पहले-पहल आन्दोलन सन् १८९७ में प्रारम्भ हुआ। उन दिनों महात्मा मुन्शीराम जालन्धर से 'सद्धर्मप्रचारक' प्रकाशित करते थे। 'सद्धर्मप्रचारक' में इसके लिए प्रबल आन्दोलन किया गया और 'आर्यपत्रिका' आदि अन्य सामाजिक पत्रों ने इसका पक्षपोषण किया। नवम्बर १८९८ के आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। यह प्रस्ताव स्वीकृत होगया।

गुरुकुल को खोलने का प्रस्ताव तो स्वीकृत हो गया, पर धन के बिना गुरुकुल खुलना सम्भव कैसे था? धन एकत्रित करने का कार्य महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने

ऊपर लिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि जब तक ३० हजार रुपया एकत्रित नहीं कर लेंगे, अपने घर में पैर नहीं रखेंगे। आजकल ३० हजार रुपया किसी सार्वजनिक कार्य के लिए एकत्रित करना बहुत कठिन नहीं है। पर अब से ५० वर्ष पूर्व जब कि किसी सार्वजनिक कार्य के लिए दान देने का अभ्यास जनता को नहीं था, ३० हजार रुपया इकट्ठा करना एक असाधारण बात थी। महात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल के लिये धन एकत्रित करने निकल पड़े। आठ महीने लगातार घूमने के बाद ३० हजार रुपये इकट्ठे हुए। महात्मा मुन्शीराम जी की यह असाधारण सफलता थी. उनके अटल विश्वास और हार्दिक धर्मप्रेम की यह अद्भुत विजय थी। इस सफलता के अभिनन्दन स्वरूप लाहौर में उनका शानदार जुलूस निकला। सर्वत्र फूलों के हारों तथा उत्साह-पूर्ण जय-कारों के साथ उनका स्वागत हुआ।

गुरुकुल के नियम आदि बनाने का कार्य भी महात्मा मुन्शीराम जी के सुपर्द किया गया था और २६ दिसम्बर १९०० के प्रतिनिधी सभा के साधारण अधिवेशन में गुरुकुल के पहले नियम स्वीकृत किये गये थे। गुजरांवाला के लाला रलाराम उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे। उनके हस्ताक्षरों से गुरुकुल की प्रथम नियमावली प्रकाशित हुई। उनमें २० पृष्ठों की भूमिका थी, जिसमें

इन नियमों की व्याख्या की गई है। गुरुकुल के उद्देश्य आदि के सम्बन्ध में यह नियमावली सभा की प्रामाणिक घोषणा है। गुरुकुल की स्थापना के समय महात्मा मुन्शीराम जी के ही नहीं, अपितु उस समय की आर्य प्रतिनिधि सभा के क्या विचार थे, इसे जानने के लिए इस प्रथम नियमावली से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। इसमें गुरुकुल की स्थापना के निम्नलिखित आठ कारण बताए गए हैं।

(१) वेद आर्य समाज के प्राण हैं। विशाल संस्कृत साहित्य का मूलस्रोत वेद ही है। वेद के अध्ययन के लिये गुरुकुल की आवश्यकता है।

(२) संस्कृति का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक अंगों और उपांगों के साथ वेद का अध्ययन न किया जाये। अतः ऐसे शिक्षणालय की आवश्यकता है, जहां संस्कृत साहित्य के साथ-साथ वैदिक साहित्य का भी अध्ययन हो।

(३) भारत की शिक्षा सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय तभी हो सकती है जब यहां के शिक्षणालयों में संस्कृत का अध्ययन हो। ब्रिटिश सरकार ने जो शिक्षा प्रचलित की है, वह भारतीयों को 'अंग्रेज' बना रही है, वह भारतीयों में देशभक्ति का विनाश कर रही है। मुसलिम शासन की -

अनेक शताब्दियां जिन हिन्दुओं को अपनी दास नहीं बना सकीं, उन्हें दस-बीस वर्षों की अंग्रेजी शिक्षा दास बनाने में समर्थ हो रही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम आर्यजाति के लिये शिक्षा की एक ऐसी योजना तय्यार करें जो सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रीय' हो, जो आर्य जाति की 'राष्ट्रीय-शिक्षा' की आवश्यकता को पूर्ण करे। हमारा यह अभिप्राय नहीं है, कि विदेशी भाषा और नये ज्ञान-विज्ञानों को ग्रहण न किया जाय। इनका लाभ उठाना परम आवश्यक है। हमें अंग्रेजी, आधुनिक विज्ञान, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन करना ही चाहिए। क्या यूरोपियन लोग विदेशी भाषाओं और प्राच्य विद्याओं को नहीं पढ़ते हैं ? वे पढ़ते हैं, पर अपनी शिक्षा को विदेशी नहीं बना देते। इसी तरह हमें भी सब विदेशी ज्ञान विज्ञानों को पढ़ते हुए अपनी 'राष्ट्रीयता' की रक्षा करनी चाहिए। गुरुकुल की स्थापना में यह तीसरा हेतु है।

(४) ब्रह्मचर्य शिक्षा का मुख्य आधार है। हमारी संस्थाएं ऐसी होनी चाहिएं जो नगरों के दूषित प्रभावों से दूर हों और जहां ब्रह्मचर्य के नियमों का भली भांति पालन होता हो।

(५) सरकारी यूनीवर्सिटियों में परीक्षा की जो पद्धति

प्रचलित है वह वास्तविक विद्वत्ता के मार्ग में बाधक है। अत: कोई ऐसी संस्था जो सरकारी यूनिवर्सिटियों की परीक्षा भी दिलाना चाहे और वैदिक पाण्डित्य भी उत्पन्न करना चाहे, कभी सफल नहीं हो सकती। डी० ए० वी० कालेज ने यही प्रयत्न किया और उसे असफलता हुई। गुरुकुल इस शिक्षा पद्धति से दूर रहेगा।

(६) शिक्षणालयों में शिक्षक को बालक के माता पिता का स्थान लेना चाहिए। भारत के वर्तमान शिक्षणालयों में शिक्षक लोग माता पिता का स्थान नहीं लेते। गुरुकुल में इस कमी को दूर किया जायगा।

(७) शिक्षा के लिए कोई फीस नहीं ली जानी चाहिये।

(८) यूरोपियन विद्वानों ने भारतीय इतिहास की जो खोज की है उसमें भारतीय इतिहास के साथ न्याय नहीं हुआ—उसमें जो तिथिक्रम निश्चित किया गया है, वह सर्वथा अशुद्ध है। उसका खण्डन करने के लिये भारत के प्राचीन इतिहास तथा पुरातत्व का विवेचनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए। यह कार्य भी गुरुकुल जैसे शिक्षणालय से ही पूर्ण किया जा सकता है।

गुरुकुल की स्थापना के हेतुओं पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। ये अपने

आप में सर्वथा स्पष्ट हैं। ऋषि दयानन्द ने शिक्षा सम्बन्धी जो आदर्श अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित किये थे, उन की ये समयानुकूल व्याख्या-मात्र प्रतीत होते हैं। इन को दृष्टि में रख कर गुरुकुल में पढ़ाने के लिए जो पहली पाठविधी बनाई गई थी, उसमें साङ्गोपाङ्ग वेद और संस्कृत साहित्य के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ अंग्रेजी, गणित, रसायन (Chemistry) भौतिक विज्ञान (Physics), जीवन विज्ञान (Biology) वनस्पति शास्त्र (Botany). भूविज्ञान (Geology), कृषि, आयुर्वेद, पाश्चात्य दर्शन, अर्थशात्र आदि के उच्च कोटि के अध्ययन की भी व्यवस्था की गई थी। वस्तुतः गुरुकुल के प्रथम प्रवर्त्तक आर्य जाति के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षा' की योजना तैयार कर रहे थे। उनकी दृष्टि में आदर्श 'राष्ट्रीय शिक्षा' वह थी, जिस में आधुनिक ज्ञानविज्ञान के साथ संस्कृत साहित्य और साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन होता हो।

महात्मा मुन्शीराम जी जब गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करते हुए पहिले-पहल लाहौर आये, तब उन्होंने, सन् १९०० के जनवरी मास में कुछ व्याख्यान गुरुकुल के सम्बन्ध में दिए। इन व्याख्यानों से गुरुकुल के विषय में बड़ी हलचल मची और पञ्जाब के शिक्षित समुदाय का ध्यान गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुआ था। इन व्याख्यानों में

उन्होंने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताओं को प्रकट किया था—

१. ब्रह्मचर्य का पुनरुद्धार।

२. ब्रह्मचारियों और उनके गुरुओं का पुत्र और पिता के सम्बन्ध से रहना।

३. परीक्षा-पद्धति के दोषों से मुक्त रहना।

४. शारीरिक उन्नति के लिए विशेष रूप से बल देना।

५. भारत की शिक्षा-प्रणाली में संस्कृत तथा मातृभाषा हिन्दी को प्रमुख स्थान देना।

६. आधुनिक विज्ञानों तथा इङ्गलिश भाषा को समुचित स्थान देना।

७. शिक्षा के लिए कोई फीस न लेना।

८. प्राचीन भारतीय इतिहास के अन्वेषण तथा शोध का विशेष रूप से प्रबन्ध करना।

गुरुकुल की स्थापना के समय उसके संस्थापकों के सम्मुख, ये विचार थे। इन्हीं को दृष्टि में रख कर गुरुकुल का प्रारम्भ किया गया।

गुरुकुल की स्थापना

गुरुकुल कहां खुले, इसके सम्बन्ध में भी आर्य जनता के सम्मुख अनेक विचार थे। श्री गोविन्दपुर के लाला

बिशनदास ने १०००) और लाला मोहनलाल ने भूमि देने का वचन दिया। लूनमियानी के लाला ज्वालासहाय ने अपनी एक भूमि पेश की। परन्तु महात्मा मुन्शीराम गुरुकुल को गंगा के तट पर स्थापित करना चाहते थे। उनकी आंखों में वेद का यह मन्त्र सदैव विद्यमान रहता था:—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽजायत ॥ यजुर्वेद

वे कहीं नदियों का संगम और पर्वतों की उपत्यका चाहते थे। उनकी दृष्टि रह रह कर हिमालय के दामन में गंगा के तट पर जाती थी। महात्मा जी कई बार वहां गये और निराश लौटे। ला० रलाराम और उनके साथी पंजाब से बाहर जाने को उद्यत न थे। अन्त में जब मुन्शी अमनसिंह ने अपना कांगड़ी ग्राम, जो हरिद्वार के सामने गंगा के पूर्वीय तट पर स्थित था, गुरुकुल के लिए प्रतिनिधि सभा को प्रदान कर दिया, तो इस समस्या का हल हुआ। मुन्शी अमनसिंह नजीबाबाद (जिला बिजनौर) के निवासी थे। आप बड़े त्यागी, धर्मप्राण और सत्यनिष्ठ रईस थे। उनकी कुल सम्पत्ति कांगड़ी ग्राम थी, जिसका क्षेत्र १४०० बीघा है। इस भूमि को गुरुकुल के लिए देकर उन्होंने जो दान दिया, उसकी जितनी प्रशंसा की

जावे कम है। गुरुकुल के लिए कांगड़ी की यह भूमि एक आदर्श का स्थान था। हिमालय की उपत्यका में गंगा के तट पर सघन रमणीक वनों से घिरे हुए इस प्रदेश से बढ़ कर गुरुकुल के लिए और कौन सा स्थान हो सकता था। अतः यहीं पर गुरुकुल खोलने का निश्चय किया गया। पर यह स्थान तो सन् १६०१ के अन्त में गुरुकुल के लिए मिला। इस से पूर्व ही १६ मई सन् १६०० को गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना कर दी गई थी। गुजरांवाला में सामयिक रूप से वैदिक पाठशाला तो पहिले ही विद्यमान थी, उसके साथ ही गुरुकुल की पहली श्रेणी भी पृथक् रूप से खोल दी गई। भक्त आनन्द स्वरूप की वाटिका में पांच कमरों का निर्माण कर उनसे आश्रम का काम लिया गया। महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने दोनों लड़के गुरुकुल में प्रविष्ट कराये। उनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रतिष्ठित कुलों के २० बालक इस गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। वैदिक पाठशाला में पं० गङ्गादत्त संस्कृत अध्यापक का कार्य करते थे। उन्हें पाठशाला से बदल कर गुरुकुल का मुख्याध्यापक नियत किया गया। उनके साथ पं० विष्णुमित्र, महाशय भक्तराम तथा मा० सुन्दरसिंह अध्यापक नियत हुए। दो वर्ष तक गुरुकुल गुजरांवाला में ही रहा।

इस बीच में कांगड़ी की भूमि गुरुकुल के लिए मिल चुकीथी। कांगड़ी ग्राम के दक्षिण में गंगा के तट पर घने जंगल

को साफ़ कर कुछ छप्पर बनाए गए थे। ४ मार्च १९०२ को गुरुकुल गुजरांवाला से कांगड़ी ले आया गया। कुछ दिन बाद २२,२३ और २४ मार्च को गुरुकुल का प्रारम्भ-उत्सव मनाया गया। प्रारम्भ से ही जनता को गुरुकुल से इतना प्रेम था, कि बिना किसी विशेष नोटिस के ५०० नर-नारी उत्सव में सम्मिलित हुए और ३०००) नकद इकठ्ठा हुआ। धीरे धीरे गुरुकुल के वार्षिकोत्सव का महत्व बढ़ता गया। कुछ ही वर्षों में यह आर्यसमाज का सबसे बड़ा मेला हो गया, और इस में न केवल पंजाब से अपितु सारे भारत से हज़ारों की संख्या में नर-नारी सम्मलित होने लगे और उत्सव के व्याख्यानों, सम्मेलनों, उपदेशों और परिषदों द्वारा अपने ज्ञान तथा धर्म की पिपासा को शान्त करने लगे।

गुरुकुल के उत्सव का महत्व किस प्रकार बढ़ता गया, यह प्रारम्भ के निम्न-लिखित उत्सवों के विवरण से भली भांति स्पष्ट हो सकेगा:—

सन्	जनता की संख्या	नकद रुपया
१९०२	५००	३०००
१९०३	४०००	७०००
१९०४	२५०००	३४०००
१९०५	१००००	३००००
१९०६	३००००	२५०००
१९०७	५००००	४५०००

गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले ब्रह्मचरियों की संख्या भी निरन्तर बढ़ रही थी। गुजरांवाला से कुल ३४ ब्रह्मचारी शुरु में कांगड़ी आये थे। पांचवें साल के अन्त में ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ कर १८७ हो गई। पहले लोगों का ख्याल था, कि कौन माता पिता अपने गोद के लालों को अपने से पृथक् कर जङ्गल में १४ वर्ष के लिए पढ़ने को भेजेग। पर अनुभव ने इस अशंका को निर्मूल कर दिया। प्रतिवर्ष सैकड़ों प्रार्थना पत्र अपने बालकों को गुरुकुल में दाखिल कराने के लिए आने लगे। सब को प्रविष्ट करना सम्भव नही था, क्योंकि रुपये की कमी थी और ब्रह्मचारियों के निवास के लिए प्रबन्ध पर्याप्त नही था। ब्रह्मचारियों का प्रवेश चुनाव द्वारा होता था और बहुत से मातापिताओं को निराश होकर गुरुकुल से लौटाना पड़ता था।

गुरुकुल का विकास

आन्तरिक प्रबन्ध और व्यवस्था की दृष्टि से भी गुरुकुल निरन्तर उन्नति कर रहा था। धीरे धीरे फूंस की झोंपड़ी का स्थान ईंट की इमारतें ले रही थीं। चार वर्ष के अन्दर अन्दर २५०००) की लागत से २२ पढ़ने के कमरे और ब्रह्मचारियों के निवास के लिए पृथक् आश्रम बना लिया गया था। इनके अतिरिक्त भोजन भण्डार, हस्पताल, यज्ञशाला, धर्मशाला, और अध्यापकों के निवास के लिए

भी मकान बन गये थे। दो कुवें भी तय्यार हो गए थे। पर गुरुकुल के संचालक इतने से सन्तुष्ट नहीं थे। वे ५ लाख की लागत से ६०० विद्यार्थियों के निवास तथा पढ़ने योग्य पक्की सुन्दर इमारत बनवाने का स्वप्न ले रहे थे। पटियाला स्टेट के मुख्य इंजीनियर रायबहादुर ला० गङ्गाराम से उन्होंने उत्कृष्ट इमारत का नक़्शा तय्यार कराया था और उसके लिए धन की अपील की थी। सन् १९०७ में महात्मा मुंशीराम जी ने लिखा था कि गुरुकुल के लिए पक्की इमारतों का निर्माण परमावश्यक है। इसी के अनुसार सन् १९०८ में कालेज की पक्की शानदार इमारत बननी आरम्भ हो गई थी।

गुरुकुल के पहिले आचार्य पं० गंगादत्त जी थे। महात्मा मुंशीराम जी उस समय मुख्याधिष्ठाता थे। पं० गंगादत्त जी व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके साथ पं० काशीनाथ शास्त्री, पं० भीमसेन शर्मा, पं० दौलतराम शास्त्री, पं० पद्मसिंह, पं० विष्णुमित्र आदि अनेक विद्वान् काम करते थे। अंग्रेज़ी तथा गणित आदि पढ़ाने का कार्य मा० गोवर्धन बी० ए०, मा० विनायक गणेश साठे आदि द्वारा होता था। भोजन भण्डार का प्रबन्ध जलन्धर के लाला शालिग्राम जी के हाथ में था। लाला जी गुरुकुल के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपना तन, मन, धन, गुरुकुल के लिए अर्पित कर रखा था। इन

महानुभावों के सहयोग से गुरुकुल दिन दूनी रात चौगनी उन्नति करता रहा।

१६०२ में गुरुकुल, कांगड़ी में आया था। १६०६ तक उस सात श्रेणियां हो चुकी थीं। अब गुरुकुल में उच्च कक्षाओं की पढ़ाई की समस्या उपस्थित हुई। इससे पूर्व केवल छोटी श्रेणियां ही थीं, जिनमें प्रधानतया संस्कृत साहित्य और व्याकरण की तथा सामान्यतया अंग्रेजी तथा अन्य प्रारम्भिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अब उच्च कक्षाओं के खुलने पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि विज्ञान, गणित, आदि आधुनिक विषयों की क्या व्यवस्था की जाय। इसी समय मा० रामदेव जी गुरुकुल में कार्य्य करने आये। वे एक ट्रेण्ड ग्रेजुएट थे और जलन्धर स्कूल के सफल हैडमास्टर रहे थे। उनका विचार था कि आधुनिक विज्ञान शिक्षा का आवश्यक अङ्ग है, और गुरुकुल में उसकी यथोचित व्यवस्था होनी उचित है। साथ ही वे शिक्षासम्बन्धी नियन्त्रण के पक्षपाती थे, गुरुकुल अपनी प्रारम्भिक दशा को पार कर रहा था, अब वे चाहते थे कि यहां पढ़ाई का नियमित समयविभाग बने और सब कार्य्य व्यवस्थित रूप में हो।

पर आचार्य गंगादत्त जी को यह बात पसंद न थी। वे एक पुराने ढंग के पण्डित थे। नवीन विज्ञानों का प्रवेश और नई शिक्षा-विधियों का प्रयोग उन्हें पसंद न

आता था उन में और मा० रामदेव जी में मत-भेद बढ़ने लगा। महात्मा मुन्शीराम जी ने मा० रामदेव जी का पक्ष लिया। यह स्वाभाविक भी था, क्यों कि शुरु से ही गुरुकुल को एक पुराने ढंग की पाठशाला बनाना अभिप्रेत नहीं था। गुरुकुल की प्रारम्भिक स्कीम में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को यथोचित स्थान दिया गया था।

आचार्य्य गंगादत्त जी का मत-भेद सिद्धान्त तथा नीति से सम्बन्ध रखता था। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने गुरुकुल से त्यागपत्र दे दिया और कुछ समय बाद ज्वालापुर के निकट एक पृथक् गुरुकुल की स्थापना की। यह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के नाम से प्रसिद्ध है, और इसमें आचार्य्य गंगादत्त जी के विचारों के अनुसार इतिहास, अर्थशास्त्र, रसायन, गणित, आदि की उपेक्षा कर विशुद्ध संस्कृत के अध्ययन पर ही ज़ोर दिया जाता है।

आचार्य्य गंगादत्त जी के बाद महात्मा मुंशीराम जी ही गुरुकुल के आचार्य्य नियत हुए। शिक्षा-विषयक प्रबन्ध में उनकी सहायता मा० रामदेव जी करते थे; जो उस समय मुख्याध्यापक के पद पर नियत थे।

महाविद्यालय का प्रारम्भ

सन् १६०७ में गुरुकुल में महाविद्यालय (कालेज) विभाग का प्रारम्भ हुआ। तीन विद्यार्थी ६ साल तक विद्यालय बिभाग में रह कर, अधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण

कर महाविद्यालय में आये। महाविद्यालय विभाग के शुरू होने पर गुरुकुल में अनेक उच्च कोटी के विद्वान् अध्यापन के लिए नियुक्त किये गए। गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग के इन प्रारम्भिक शिक्षकों का नाम देना यहां अनुचित न होगा:—

१. महात्मा मुंशीराम जी—आचार्य।
२. मा० रामदेव जी बी० ए०, एम० आर० ए० एस० उपाचार्य तथा उपाध्याय पाश्चात्य दर्शन।
३. पं० काशीनाथ शास्त्री—उपाध्याय प्राच्यदर्शन।
४. पं० शिवशङ्कर काव्यतीर्थ—उपाध्याय वेद।
५. श्री० बालकृष्ण एम० ए०—उपाध्याय इतिहास, अर्थशास्त्र।
६. श्री० विनायक गणेश साठे एम० ए०—उपाध्याय रसायन शास्त्र।
७. श्री महेशचरणसिंह ० एस० सी०—उपाध्याय बनस्पतिशास्त्र।
८. श्री घनश्यामसिंह गुप्त—उपाध्याय विज्ञान
९. श्री सेवाराम एम० ए०—उपाध्याय आंगल भाषा
१०. श्री लक्ष्मीनारायण बी० ए०—उपाध्याय आंगल भाषा
११. श्री लक्ष्मणदास बी० ए०—उपाध्याय गणित

महाविद्यालय खुलने के साथ ही मा० रामदेव जी उपाचार्य के पद पर नियत हो गये थे और उनके स्थान पर मुख्याध्यापक मा० गोवर्धन बी० ए० बने थे। शिक्षा के क्षेत्र में इस समय गुरुकुल बड़ी तत्परता से कार्य्य कर रहा था। गुरुकुल में सब विषयों की शिक्षा मातृभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती थी। विज्ञान, गणित, पाश्चात्य दर्शन आदि विषय भी हिन्दी में ही पढ़ाए जाते थे। जब महाविद्यालय विभाग खुला तो उसमें भी हिन्दी को ही माध्यम रखा गया। उस समय हिन्दी में उच्च शिक्षा देना एक असम्भव बात समझी जाती थी। गुरुकुल ने इसे कार्यरूप में परिणत करके दिखा दिया। उस समय आधुनिक विज्ञानों की पुस्तकें हिन्दी में बिल्कुल न थीं। गुरुकुल के उपाध्यायों ने पहिले पहल इस क्षेत्र में काम किया और गुरुकुल से अनेक उच्च कोटी के ग्रन्थ प्रकाशित हुए। प्रो० महेशचरणसिंह की हिन्दी कैमिस्ट्री, प्रो० साठे का विकासवाद, श्रीयुत गोवर्धन की भौतकी और रसायन, प्रो० रामशरणदास सक्सेना का गुणात्मिक विश्लेषण, प्रो० सिन्हा का वनस्पतिशास्त्र, प्रो० प्राणनाथ का अर्थशास्त्र, राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र, और राजनीति-शास्त्र और प्रो० बालकृष्ण का अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र और प्रो० सुधाकर का मनोविज्ञान हिन्दी में अपने-अपने विषय के पहिले ग्रन्थ हैं। यह इतना महत्वपूर्ण कार्य गुरुकुल द्वारा किया गया। हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना ही गुरुकुल द्वारा

प्रारम्भ हुई। इन वैज्ञानिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से उच्च कोटि के ग्रन्थ गुरुकुल द्वारा प्रकाशित हुए। प्रो० रामदेव ने भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में मौलिक अनुसन्धान कर अपना प्रसिद्ध 'भारतवर्ष का इतिहास' प्रकाशित किया। महात्मा मुंशीराम जी ने विविध धर्म्मों का तुलनात्मक अध्ययन कर पारसी आदि अनेक धर्म्मों पर मौलिक ग्रन्थ लिखे। गुरुकुल की साहित्य परिषद् ने दो दर्जन से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित किए। ये सभी ग्रन्थ किन्हीं नवीन विषयों पर निबन्ध के रूप में थे। साहित्य परिषद् की ओर से गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर 'सरस्वती सम्मेलन' किये जाते थे, जिन में विविध विषयों पर मौलिक निबन्ध पढ़े जाते थे। उस समय के शिक्षित समुदाय में इन निबन्धों की बड़ी धूम थी। गुरुकुल ने छोटे बालकों के लिए पाठ्य पुस्तकें तय्यार करने के लिए भी बड़ा काम किया। संस्कृत की पहली 'रीडरें' गुरुकुल ने ही प्रकाशित की। सब श्रेणियों के लिए हिन्दी, संस्कृत, विज्ञान आदि की बहुत सी पाठ्य पुस्तकें गुरुकुल में तय्यार हुईं। बाहर के भी अनेक शिक्षणालयों ने इनको अपनाया।

सन् १००७ में 'वैदिक मैगज़ीन' का भी पुनरुद्धार किया गया। इस पत्रिका के संस्थापक पण्डित गुरुदत्त थे। उनके देहान्त के साथ साथ इस पत्रिका का भी अन्त हो

गया था। 'वैदिक मैगज़ीन' अंग्रेजी में निकलती थी। पाश्चात्य संसार को वैदिक धर्म का सन्देश सुनाने तथा आर्य समाज के दृष्टि कोण से प्राच्य विद्याओं का अनुशीलन करने के लिए इस पत्रिका का बड़ा उपयोग था। अब उसका पुनरुज्जीवन किया गया और मा० रामदेव जी उसके सम्पादक बने। सन् १६०७ से १६३२ तक २५ वर्ष निरन्तर यह पत्रिका गुरुकुल से प्रकाशित होती रही। शिक्षित समाज में इस पत्रिका को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

'सद्धर्मप्रचारक' पहले जालन्धर से प्रकाशित होता था। महात्मा मुन्शीराम जी का 'सद्धर्मप्रचारक' प्रेस भी जलन्धर में ही था। एप्रिल १६०८ में उसे गुरुकुल ले आया गया। तब से 'सद्धर्मप्रचारक' नियमित रूप से गुरुकुल से ही प्रकाशित होने लगा। गुरुकुल का प्रचार करने में इस पत्र से बड़ी सहायता मिली। 'सद्धर्मप्रचारक' पत्र और 'सद्धर्मप्रचारक' प्रेस गुरुकुल को साहित्यिक जीवन का एक महत्त्व-पूर्ण केन्द्र बनाने में अत्यन्त सफल हुए।

१६१२ में गुकुरुल से दो ब्रह्मचारी श्री हरिश्चन्द्र और इन्द्र अपनी शिक्षा पूर्ण कर स्नातक हुए। वार्षिकोत्सव के अवसर पर बड़े समारोह के साथ इन का दीक्षान्त

संस्कार हुआ । गुरुकुल का वह वार्षिकोत्सव अद्वितीय था । जनता के उत्साह की कोई सीमा न थी । नव स्नातकों के दीक्षान्त संस्कार का दृश्य आज भी एक अद्भुत आकर्षण रखता है । सन् १९१२ में आज से २४ वर्ष पूर्व गुरुकुल का जब पहिला दीक्षान्त संस्कार हुआ तब उस का कितना प्रभाव जनता पर हुआ होगा इसकी कल्पना सहज में ही की जा सकती है ।

गुरुकुल और ब्रिटिश सरकार

गुरुकुल निरन्तर लोक-प्रिय होता जाता था । जनता गुरुकुल में आकर सुवर्णीय दृश्य देखती थी । शहरों के कोलाहल से दूर, गंगा के पार, हिमालय की उपत्यका में यह तपोवन स्थापित था । चारा ओर सघन वन थे । यहां ३०० के लगभग ब्रह्मचारी अपने गुरुवर्ग के साथ ब्रह्मचर्य और विद्या की साधना में तत्पर थे । यहां अमीर गरीब वा ऊँच-नीच का कोई भेद न था । गौड़ ब्राह्मण और अछूत मेघ के पुत्र एक साथ रहते थे, एक साथ भोजन करते थे सब के एकसे वस्त्र एकसा खान पान और एकसा रहन सहन था । सब एक दूसरे को भाई भाई समझते थे । यदि किसी के पिता अपने ब्रह्मचारी के लिए कोई मिष्टान लाते, तो वह सब में बाट कर उसे खाता था । ऋषि दयानन्द ने शिक्षा के सम्बन्ध में जो आदर्श

रखे थे, वे यहां मूर्त रूप में दृष्टिगोचर होते थे। यही कारण है कि गुरुकुल में एक विशेष आकर्षण था, एक अद्भुत जादू था। जो भी गुरुकुल में आता, वह वहां के जीवन से प्रभावित हुए बिना न रहता।

केवल भारतीय जनता ही नहीं, अनेक विदेशियों को भी गुरुकुल ने अपनी ओर आकृष्ट किया। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल एक नई क्रान्ति था। इसे देखने के लिए बहुत से विदेशी विद्वान गुरुकुल पधारने लगे। अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-विशारद श्रीयुत मायरन फेल्प्स सन् १९१८ में गुरुकुल आये। उन्होंने कई महीने गुरुकुल में रह कर इसके प्रत्येक विभाग का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण किया। गुरुकुल में रह कर जो कुछ देखा उसके सम्बन्ध में एक विस्तृत लेखमाला उन्होंने इलाहाबाद के प्रसिद्ध ऐंग्लो इण्डियन पत्र 'पायोनियर' में लिखी। इस लेखमाला से बहुत से शिक्षाविशारदों का ध्यान गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुआ, और गुरुकुल में विदेशी यात्रियों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी। कुछ समय बाद श्रीयुत सी० एफ० एंड्रूस अपने मित्र श्रीयुत पियर्सन के साथ आकर गुरुकुल में रहे। गुरुकुल के जीवन तथा शिक्षा का उन पर बड़ा प्रभाव हुआ। उन्होंने भी गुरुकुल के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे। परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल भारत से बाहर यूरोप और अमेरिका में भी प्रसिद्ध हो गया। इन

देशों से जो यात्री भारत आते वे गुरुकुल देखे बिना वापिस न लौटते। ब्रिटिश ट्रेड यूनियन आन्दोलन के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत सिडनी वेब गुरुकुल आये और इस संस्था को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुए। सन् १६१४ में लेबर पार्टी के प्रसिद्ध नेता और ग्रेटब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री श्री रेम्जे मैक्डानल्ड गुरुकुल पधारे। उन्होंने गुरुकुल के सम्बन्ध में एक लेख में लिखा—मैकाले के बाद भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जो सब से महत्व-पूर्ण और मौलिक प्रयत्न हुआ है, वह गुरुकुल है।

यह असम्भव था कि ब्रिटिश शासकों की दृष्टि गुरुकुल की ओर आकृष्ट न होती। श्रीयुत रैम्जे मैक्डानल्ड के शब्दों में "सरकारी अफसरों के लिये गुरुकुल एक पहेली है। गुरुकुल के शिक्षकवर्ग में एक भी अंग्रेज नहीं है। यहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नहीं है। पञ्जाब यूनिवर्सिटी में इंग्लिश साहित्य पढ़ाने के लिए जो पुस्तकें प्रयोग में आती हैं, गुरुकुल उन्हें अपनी पाठ्य पुस्तकें नहीं बनाता। यहां का एक भी विद्यार्थी सरकारी यूनिवर्सिटियों की परीक्षा देने नहीं जाता। गुरुकुल अपनी पृथक् उपाधि (डिग्री) प्रदान करता है। सचमुच यह सरकार की भारी अवज्ञा है। यह स्वाभाविक है कि घबराये हुए सरकारी अफसर के मुख से पहली बात इसके लिए यही निकले कि यह "राजद्रोही है।"

निःसन्देह पहले-पहल सरकार ने गुरुकुल को राजद्रोही संस्था समझा। सरकारी यूनिवर्सिटियों से सर्वथा स्वतन्त्र सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा के लिए किया गया वह अद्भुत प्रयत्न था। गुरुकुल राजद्रोही है, सरकार का यह विचार तब तक दूर नहीं हुआ, जब तक संयुक्तप्रान्त के लेफ्टनेन्ट गवर्नर श्रीयुत सर जेम्स मेस्टन इस संस्था को अपनी आंखों से नहीं देख गए। श्रीयुत सर जेम्स मेस्टन गुरुकुल में चार बार आये, उनकी गुरुकुल-यात्रा का उद्देश्य यही था कि वे स्वयं गुरुकुल का अवलोकन कर इस बात का निर्णय करें कि सरकारी अफ़सरों में गुरुकुल के राजद्रोही होने का जो विचार फैला हुआ है, वह कहां तक ठीक है। ६ मार्च १९१३ को श्रीयुत सर जेम्स मेस्टन पहली बार आए। अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए अपने भाषण में उन्होंने कहा—"न केवल संयुक्तप्रान्त अपितु सम्पूर्ण भारत में शिक्षा के क्षेत्र में में जो परीक्षण किए हैं, गुरुकुल उनमें सब से अधिक मौलिक और महत्वपूर्ण है।"

सरकारी कागज़ात में गुरुकुल को एक शाश्वत, भयंकर और अज्ञात खतरे का मूल बताया जाता रहा है। इसका सब से उत्तम जवाब सर जेम्स मेस्टन ने दिया। गुरुकुल को देखकर वे इतने प्रभावित हुए कि अपनी दूसरी यात्रा में (१९ फरवरी १९१४) उन्होंने गुरुकुल के सम्बन्ध में यह सम्मति दी—

"This is my idea of an ideal university."

दो वर्ष बाद भारत के वायसराय तथा गवर्नर-जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड भी गुरुकुल पधारे और इस अद्वितीय संस्था का अवलोकन कर अत्यन्त प्रभावित हुए, ब्रह्मचारियों के स्वस्थ और सुदृढ़ शरीरों की वायसराय महोदय ने बहुत प्रशंसा की और इस संस्था के सम्बन्ध में अपनी हितैषिता को प्रकट किया।

भारतीय सरकार के इन उच्च राजकर्मचारियों का स्वागत करते हुए भी गुरुकुल ने अपनी विशेषता को नहीं छोड़ा। गुरुकुल आर्यजाति की एक-मात्र राष्ट्रीय संस्था थी। उसे किसी भी दशा में भारतीयता और राष्ट्रीयता को नहीं छोड़ना चाहिए। यही कारण है कि वायसराय महोदय का अभिनन्दन संस्कृत के श्लोकों द्वारा किय गया। उनके भोजन के लिए तुलसी की चाय, फल, पकौड़ और भारतीय मिठाइयों का आयोजन किया गया। गुरुकुल में जो भी विदेशी यात्री आते थे वे ब्रह्मचारियों के साथ भोजन-भण्डार में आसन के ऊपर बैठ कर भारतीय ढंग से भोजन करते थे। गुरुकुल आकर उन्हें गुरुकुलीय बनना होता था। गुरुकुल की कुछ अपनी विशेषताएं हैं। गुरुकुल वैदिक धर्म, भारतीय सभ्यता और आर्य संस्कृति के पुनरुज्जीवनके लिए खोला गया है। बड़े से बड़े

राजपदाधिकारी के लिए गुरुकुल ने अपनी राष्ट्रीय संस्कृति का परित्याग नहीं किया।

गुरुकुल राजद्रोही न था। गुरुकुल को राजद्रोही समझना सरकार की भूल थी। पर इस में सन्देह नहीं, कि गुरुकुल भारत के राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन के लिये स्थापित किया गया था। राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन और राजद्रोह एक बात नहीं है। यही कारण है कि जब कभी धर्म, जाति व देश के लिए किसी सेवा व त्याग की आवश्यकता हुई, गुरुकुल सब से आगे रहा। १६०७ के व्यापक दुर्भिक्ष, १६०८ के दक्षिण हैदराबाद के जल-विप्लव और १६११ के गुजरात दुर्भिक्ष के अवसर पर गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अपने भोजन में कमी कर के पीड़ितों की सहायता के लिए दान दिया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ दासों का-सा व्यवहार होता था। उसके विरुद्ध महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम प्रारम्भ किया गया। भारत में श्रीयुत गोखले ने इस सत्याग्रह-संग्राम के लिये सहायता की अपील की। गुरुकुल के विद्यार्थियों ने अपना घी-दूध छोड़ कर और मजदूरी कर इस फण्ड में सहायता की। उन दिनों हरिद्वार से ऊपर गंगा का एक बड़ा बांध बांधा जा रहा था, जो 'दूधिया बन्ध" के नाम से प्रसिद्ध है। गुरुकुल के विद्यार्थी वहां साधारण मजदूरों की तरह टोकरी ढोकर मजदूरी

प्राप्त करते थे; और उसे दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियों के लिए भेजते थे। इस प्रकार गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने मजदूरी द्वारा कमा कर और अपने घी-दूध में कमी कर १५००) दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए प्रदान किया। महात्मा गांधी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की इस भावना और त्याग से बड़े प्रभावित हुए। यही कारण है कि जब महात्मा गान्धी अपने सत्याग्रह आश्रम के विद्यार्थियों के साथ भारत आए तो अहमदाबाद में पृथक् आश्रम खुलने तक अपने विद्यार्थियों के लिए सर्वोत्तम स्थान उन्होंने गुरुकुल समझा और उनके विद्यार्थी कई मास तक गुरुकुल रहे। गुरुकुल के विद्यार्थी राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन और सेवा के जिस वातावरण में रहते थे, उस में इस भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।

गुरुकुल की शाखायें

गुरुकुल की ख्याति खूब बढ़ती जाती थी। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल एक नई क्रान्ति था। जनता में इसका आकर्षण निरन्तर बढ़ रहा था। यही कारण है कि गुरुकुल स्थापित होने के कुछ ही वर्षों बाद इसकी शाखाएं पञ्जाब के भिन्न २ स्थानों पर खुलनी प्रारम्भ हुई। गुरुकुल शिक्षा की मांग बहुत अधिक थी। एक गुरुकुल कांगड़ी इस मांग को पूरा कर सकने में असमर्थ था। इसी लिए अन्य स्थानों पर शाखा-गुरुकुल खुलने प्रारम्भ हुए।

सब से पहली शाखा मुलतान में खुली। मुलतान शहर से तीन मील की दूरी पर ताराकुण्ड के समीप एक रमणीक स्थान पर यह गुरुकुल स्थापित है। इसकी स्थापना २३ फरवरी सन् १६०६ को हुई थी। तब से यह गुरुकुल निरन्तर उन्नति करता गया और धीरे-धीरे इसमें दस श्रेणियां हो गईं। अधिकारी परीक्षा पास कर इस के विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए गुरुकुल कांगड़ी जाने लगे।

मुलतान के दो वर्ष बाद गुरुकुल की दूसरी शाखा कुरुक्षेत्र में खुली। सन् १६१० में थानेसर शहर के सुप्रसिद्ध रईस लाला ज्योतिप्रसाद जी के मन में यह शुभ विचार उत्पन्न हुआ कि वे भी गुरुकुल कांगड़ी की शाखा अपने यहां खुलवायें। इन्होंने अपने यह विचार महात्मा मुन्शीराम जी के सामने रखे। लाला ज्योतिप्रसाद ने प्रारम्भ में १० हज़ार नकद और १०४८ बीघा भूमि गुरुकुल के अर्पण की। सन् १६११ में थानेसर के समीप महाभारत काल की प्रसिद्ध युद्धभूमि कुरुक्षेत्र में गुरुकुल की स्थापना हो गई। गुरुकुल की आधारशिला रखते हुए महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने भाषण में कहा था—"आज से ५००० वर्ष पूर्व इसी कुरुक्षेत्र भूमि में आर्यावर्त के नाश का बीज बोया गया था। आज उसी भूमि में आर्यावर्त की उन्नति के लिये यह बीज बोया गया है।"

सन् १९१२ में देहली के सुप्रसिद्ध सेठ रघूमल जी ने एक लाख रुपया इस निमित्त दिया कि इस से देहली के समीप गुरुकुल की एक शाखा खोली जायं। इस के फल-स्वरूप देहली से १० मील की दूरी पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना हुई।

सन् १९१५ में हरियाणा प्रान्त में श्री चौधरी पीरू सिंह जी आदि उत्साही सज्जनों द्वारा जिला रोहतक के मटिण्डू ग्राम के समीप यमुना की एक छोटी नहर के किनारे अत्यन्त रमणीक स्थान पर गुरुकुल की एक और शाखा खोली गई, जो गुरुकुल मटिण्डू के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार गुरुकुल रूपी वृक्ष निरन्तर फलफूल रहा था। सन् १९०२ में जिस गुरुकुल का बीजारोपण किया था वह १५ वर्ष के थोड़े से समय में ही एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गया था, जिसकी छाया के नीचे सैंकड़ों विद्यार्थी विद्याभ्यास कर रहे थे। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली निरन्तर लोकप्रिय होती जाती थी। गुरुकुल कांगड़ी और उसकी शाखाओं के अतिरिक्त अन्य गुरुकुल भी खुलने लगे।

महात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल की स्थापना के समय से ही उसके प्रधान संचालक रहे। गुरुकुल कागड़ी की स्थापना आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा

हुई थी। संयुक्तप्रान्त, बिहार, बम्बई आदि अन्य प्रान्तों में भी आर्य प्रतिनिधि सभायें विद्यमान थीं। इन्होंने भी गुरुकुल खोलने प्रारम्भ किये। संयुक्तप्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने वृन्दावन में गुरुकुल स्थापित किया। बिहार और बंगाल की प्रतिनिधि सभा ने वैद्यनाथ धाम में गुरुकुल खोला। मध्य प्रदेश में होशंगाबाद में गुरुकुल को प्रारम्भ किया गया। इसी प्रकार शान्ता कंज, हरपुरजान, बेट सोढ़नी आदि कितने ही स्थानों पर नये नये गुरुकुल खुले।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को केवल आर्यसमाज ने ही नहीं अपनाया, अपितु सनातनी, जैन आदि अन्य धर्मावलम्बियों ने भी ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को स्वीकार कर गुरुकुल के ढग के शिक्षणालय खोलने शुरू किये। जैनियों ने गुजरांवाला, पंचकूला आदि अनेक स्थानों पर गुरुकुल खोले। सनातनी लोगों ने हरिद्वार में ऋषिकुल की स्थापना की। इसी तरह की संस्थायें अन्य भी अनेक स्थानों पर स्थापित की गई। बीसवीं सदी का प्रथम चतुर्थांश गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की विजय का काल था। ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रचारित की की गई शिक्षाप्रणाली से असंतुष्ट देशसेवक लोग जिन नये स्वतन्त्र शिक्षणालयों को खोलने का उद्योग करते थे, उनमें ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी मन्तव्यों को सम्मुख रखा जाता था। उस युग में राष्ट्रीयशिक्षा की केवल एक ही कल्पना जनता के सम्मुख थी, वह थी गुरुकुल प्रणाली। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज और गुरुकुल की भारी विजय थी।

मुंशीराम से श्रद्धानन्द

महात्मा मुंशीराम जी गुरुकुल की स्थापना के समय से ही उसके प्रधान संचालक रहे। महात्मा जी जालन्धर के निवासी थे। वे वहां के सफल व समृद्ध वकील थे। पर उनकी प्रतिभा व शक्ति केवल वकालत तक ही सीमित नहीं थी। उन्हें आर्यसमाज से असाधारण प्रेम था। ऋषि दयानन्द के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने अपना जीवन आर्य समाज के अर्पण करने का निश्चय कर लिया था। जालन्धर आर्यसमाज के वे ही प्राण थे। पर उनकी अपूर्व प्रतिभा और कार्यशक्ति जालन्धर के संकुचित क्षेत्र तक सीमित नहीं रह सकती थी। कुछ ही वर्षों में वे पंजाब भर के सबसे बड़े आर्य नेता हो गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उन्हें अपना प्रधान निर्वाचित किया। महात्मा मुंशीराम जी न केवल कुशल प्रबन्धक थे, पर साथ ही प्रभावशाली प्रचारक भी थे। अछूतोद्धार, शुद्धि, समाज संगठन आदि विविध क्षेत्रों में उन्होंने अद्भुत योग्तता व कार्यक्षमता प्रदर्शित की। और कुछ ही समय में उनका यश भारत के कोने कोने में व्याप्त हो गया।

आर्यसमाज का कार्य करते हुए महात्मा मुंशीराम जी का ध्यान ऋषि दयानन्द के शिक्षासम्बन्धी सिद्धान्तों की तरफ आकृष्ट हुआ। उन्होंने अनुभव किया, कि देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली दूषित है। देश का उद्धार तभी हो सकता है, जब बच्चों को ब्रह्मचर्य, तपस्या व सादगी के वातावरण में रख कर शिक्षा दी जाय। ऋषि दयानन्द की गुरुकुल की कल्पना को पूर्व रूप देने का उन्होंने संकल्प किया। गुरुकुल की स्थापना

का मुख्य श्रेय हीं को प्राप्त है। उन्होंने अपना तन, मन, धन और सर्वस्व गुरुकुल के लिये अर्पण किया। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर उन्हें अटल विश्वास था, इसीलिए जहां उन्होंने अपने दोनों पुत्र गुरुकुल के अर्पित किये, वहां साथ ही अपनी सारी सम्पत्ति गुरुकुल को दान कर दी। उनके पास जो कोठी, प्रेस तथा अन्य सम्पत्ति थी, वह गुरुकुल के अर्पण कर दी। महात्मा जी का यह "सर्वमेध यज्ञ" वस्तुतः अद्वितीय है। गुरुकुल के स्थापना काल से सन् १९१७ तक निरन्तर १५ वर्ष हात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहे। इस बीच में गुरुकुल ने जो उन्नति की, उसकी कथा हम ऊपर लिख चुके हैं।

१५ वर्ष तक गुरुकुल का संचालन कर सन् १९१७ से महात्मा मुन्शीराम जी ने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया। वैदिक आश्रम मर्यादा के अनुसार महात्मा जी के लिये संन्यास लेना आवश्यक था। गुरुकुल-निवास महात्मा जी का वानप्रस्थ-आश्रम था। सन् १९१७ के वार्षिकोत्सव के बाद उन्होंने संन्यास ग्रहण किया और 'मुन्शीराम' से 'श्रद्धानन्द' हो गये। संन्यासी हो कर महात्मा जी अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और गुरुकुल के निवासियों ने भरे हृदय से अपने कुलपिता को विदा दी।

सन् १९१७ में महात्मा मुन्शीराम जी के विदा होते समय गुरुकुल की क्या दशा थी, इस पर संक्षिप्त रूप से

प्रकाश डालना उपयोगी है। सन् १६१७ में गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थियों की कुल संख्या ३४० थी, जिन में से २७६ विद्यालय विभाग में और ६४ महाविद्यालय विभाग में शिक्षा प्राप्त करते थे। महाविद्यालय विभाग में वेद दर्शन, संस्कृत-साहित्य और आंगलभाषा का पढ़ना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था। इन के अतिरिक्त विस्तृत वैदिक साहित्य, आर्यसिद्धान्त, रसायन, इतिहास, अर्थशास्त्र पाश्चात्य दर्शन, कृषि और गणित ये सात ऐच्छिक विषय थे जिनमें से कोई एक विषय विद्यार्थियों को लेना होता था। जो विद्यार्थी विस्तृत वैदिक साहित्य का ऐच्छिक विषय के रूप में ले, उसे स्नातक होने पर वेदालङ्कार की, आर्यसिद्धान्त लेने वाले को सिद्धान्तालङ्कार की, और शेष सब को विद्यालङ्कार की उपाधि दी जाती थी। महाविद्यालय विभाग में इन विविध विषयों को पढ़ाने के लिए ५ उपाध्याय नियत थे। मुख्याध्यापक के पद पर गुरुकुल के स्नातक पं० यज्ञदत्त विद्यालङ्कार नियत थे, जो बड़ी योग्यता से विद्यालय विभाग का संचालन करते थे। ब्रह्मचारियों की चिकित्सा के लिए गुरुकुल का अपना हास्पिटल था। उसके मुख्य चिकित्सक डाक्टर सुखदेव जी थे। डा० सुखदेव जी बड़ी ही लगन और सेवा वृत्ति के चिकित्सक थे। उनका सारा समय ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य की उन्नति में लगता था। गुरुकुल का आन्तरिक प्रबन्ध लाला नन्दलाल जी के हाथ में था। लाला जी अत्यन्त योग्य प्रबन्धकर्ता थे वे सहायक मुख्याधिष्ठाता के पद पर नियत

थे, और गुरुकुल के आन्तरिक प्रबन्ध को व्यवस्थित करने के लिए बहुत प्रयत्नशील थे। गुरुकुल कार्यालय लाला मुरारीलाल जी के हाथ में था, जो दिन रात एक कर गुरुकुल की सेवा में तत्पर रहते थे। आश्रम के अध्यक्ष मा० सुखराम जी थे, जो अपना जीवन गुरुकुल के लिए अर्पण कर त्याग का अनुपम आदर्श विद्यार्थियों के सम्मुख रख रहे थे। अभिप्राय यह है कि महात्मा मुन्शीराम जी के गुरुकुल से विदा होने के समय गुरुकुल ऐसी अवस्था में पहुंच चुका था जब उसका प्रत्येक विभाग अत्यन्त योग्य हाथों में था, और सब लोग मिलकर गुरुकुल की उन्नति के लिए तत्पर थे।

गुरुकुल की प्रगति

सन् १९१७ में महात्मा मुन्शीराम जी सन्यास लेकर गुरुकुल से विदा हुए थे। उनके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान लाला रामकृष्ण जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियत हुए। वे जालन्धर रह कर ही गुरुकुल का प्रबन्ध करते थे और उनके प्रतिनिधि रूप में प्रो० सुधाकर जी गुरुकुल में रहकर कार्य करते थे। आचार्य का काम प्रो० रामदेव जी को दिया गया। प्रो० रामदेव जी सन् १९०५ में गुरुकुल में आये थे, और कुछ वर्ष मुख्याध्यापक का कार्य करने के अनन्तर जब गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग खुला, तो उपाचार्य के पद पर नियत हुये थे। गुरुकुल में कार्य करते हुए उन्हें ग्यरह वर्ष हो चुके थे और यहां का उन्हें

अच्छा अनुभव था। इस समय सभा के प्रधान पण्डित विश्वम्भरनाथ जी बने, जो बहुत समय से उपप्रधान का कार्य कर रहे थे। गुरुकुल का यह प्रबन्ध १६२० तक रहा। इस बीच में गुरुकुल की निरन्तर उन्नति हुई। सन् १६१६ में लुधियाना जिले के रायकोट नामक स्थान पर गुरुकुल की एक और शाखा खोली गई। इसके संस्थापक श्री स्वामी गंगागिरि जी महाराज हैं। गुरुकुल रायकोट की आधारशिला श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज द्वारा रक्खी गई थी।

आन्तरिक दृष्टि से भी इस काल में गुरुकुल की अच्छी उन्नति हुई। सन् १६१८ में गुरुकुल में राष्ट्र प्रतिनिधि सभा (मॉक पार्लियामैंट) का सूत्रपात हुआ। इस सभा में ब्रह्मचारियों के मन्त्रिमण्डल (कैबिनेट) द्वारा किसी गम्भीर विषय पर मसविदा पेश किया जाता है, और उस पर बाकायदा पार्लियामैन्टरी ढंग से वाद-विवाद होता है। सन् १६८१ से आज तक राष्ट्र प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन प्रति वर्ष होते हैं, और इन अधिवेशनों में अनेक बार देश के नेता भी सम्मिलत हो चुके हैं।

इसी काल में कलकत्ता यूनिवार्सिटी कमीशन के प्रधान डा० सैडलर सर आशुतोष मुकर्जी के साथ गुरुकुल पधारे। गुरुकुल का अवलोकन करके वे बहुत प्रभावित

हुये। उन्होंने अपने एक पत्र में गुरुकुल के सम्बन्ध के में विचार प्रकट किये थे—"मैं समझता हूँ कि जिस शिक्षा विधि में मातृभाषा को प्रथम और सब से प्रमुख स्थान दिया जावे, वहीं यह सम्भव है कि मन का स्वतन्त्र विकास होकर मानसिक वृत्तियों तथा भावों पर प्रभुत्व प्राप्त हो सके। .....मेरी हार्दिक इच्छा है कि गुरुकुल का विकास राज्य द्वारा स्वीकृत एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में हो सके।"

डा० सैडलर के अतिरिक्त भूतपूर्व भारत सचिव मान्टेग्यू महोदय के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुत किश और राइट आनरेबल श्री श्रनिवास शास्त्री महोदय गुरुकुल आये। श्रीयुत् किश ने गुरुकुल के सम्बन्ध में लिखा था:—"प्रबन्ध के साधनों की पूर्णता, कार्यकर्त्ताओं के विश्वास और ब्रह्मचारियों की प्रत्यक्ष प्रसन्नता ने मुझ पर इतना प्रभाव डाला है, कि मैं उसको इन थोड़ी सी पंक्तियों में वर्णन नहीं कर सकता।"

श्री श्रीनिवास शास्त्री ने अपने एक भाषण में ये विचार प्रकट किये थे—"शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहे या भारतीय भाषायें, इस प्रश्न पर बहुत वाद विवाद है। मेरा अपना विचार यह रहा है. कि विद्यालय विभाग में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें ही रहनी चाहियें, परन्तु

महाविद्यालय विभाग की पढ़ाई अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही होनी चाहिये। परन्तु अब गुरुकुल को देख कर मैं अपने इस विचार से परे हट रहा हूँ।"

यह सचमुच गौरव की बात है, कि गुरुकुल ने श्री श्रीनिवास शास्त्री जी जैसे गम्भीर विचारक को भी अपने मन्तव्यों पर पुनः विचार करने के लिये बाधित किया।

सन्यासी होने के बाद स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आर्य-समाज का एक प्रामाणिक इतिहास लिखने का विचार किया। इस कार्य को वे गुरुकुल कुरुक्षेत्र में बैठ कर करना चाहते थे। पर प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामकृष्ण जी और गुरुकुल के आचार्य श्री रामदेव जी के आग्रह तथा अन्तरंग सभा की प्रार्थना पर स्वामी जी ने गुरुकुल कांगड़ी में ही बैठ कर इतिहास लिखने का निश्चय किया। इतिहास के लिये स्वामी जी ने बहुत सी सामग्री एकत्रित की। पर इसी बीच में गढ़वाल प्रान्त में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। यह प्रदेश गुरुकुल के समीप ही था। अतः संभव नहीं था कि गुरुकुल वासी इसकी उपेक्षा कर सकें। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दुर्भिक्ष निवारण के लिये एक अपील समाचार पत्रों में प्रकाशित की और स्वयं गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के साथ गढ़वाल प्रस्थान किया। स्वामी जी की अपील पर ७० हजार के लगभग रुपया नकद एकत्रित

हुआ था। गुरुकुल के विद्यार्थियों को जनता की क्रियात्मक सेवा करने का यह बहुत उत्तम अवसर मिला था। उन्होंने इसका पूर्ण उपयोग किया और १९१८ की ग्रीष्मऋतु में गढ़वाल में खूब काम किया।

पर स्वामी श्रद्धानन्द जी देर तक गुरुकुल नहीं रह सके। सन् १९१९ में भारत में रोलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की घोषणा की। अनेक स्थानों पर सरकार और जनता का संघर्ष हुआ। अमृतसर में जलियानवाला बाग का हत्याकाण्ड इसी समय हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द जी भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हुये। सितम्बर सन् १९१९ में जब कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ तो स्वामी जी उसकी स्वागतसमिति के अध्यक्ष निर्वाचित हुवे। यह समय देश में तीव्र राजनीतिज्ञ आन्दोलन का था। सर्वत्र भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भावना प्रबल हो रही थी। ऐसी स्थिति में लोग राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता को भली भांति अनुभव करने लगे थे और गुरुकुल का महत्व जनता की दृष्टि में बढ़ रहा था। ऐसे समय में गुरुकुल को एक अत्यन्त प्रभावशाली नेता की आवश्यकता थी। विस्तृत राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करने के बाद भी स्वामी जी को गुरुकुल के हित की सदा चिन्ता रहती थी। तब गुरुकुल प्रेमी बार-बार स्वामी जी से फिर गुरुकुल संभालने का अनुरोध करने लगे, तो फरवरी १९२० में स्वामी जी फिर गुरुकुल लौट आए, और पहिले की तरह मुख्याधिष्ठाता तथा आचार्य दोनों पदों का चार्ज ले लिया।

सन् १६२१ का वार्षिकोत्सव बड़े महत्व का हुआ। लाला लाजपतराय, पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री विठ्ठल-भाई पटेल, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि बहुत से देश प्रसिद्ध नेता इस उत्सव में सम्मिलित हुए। चन्दा भी खूब आया। वायदे मिलाकर १ लाख ६८ हजार रुपया एकत्रित हुआ। नकद चन्दे की मात्रा भी १ लाख से ऊपर थी। देश में राष्ट्रीय जागृति के साथ २ गुरुकुल का महत्व भी जनता की दृष्टि में बढ़ रहा था। यह इससे भलीभांति स्पष्ट हो जाता है।

नई व्यवस्था

गुरुकुल के इतिहास में सन् १६२१ का बड़ा महत्व है। गुरुकुल का स्वरूप क्या हो, इस विषय में प्रतिनिधि सभा के नेताओं में देर से मतभेद चला आता था। गुरु-कुल का विकास एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय के रूप में हो रहा था। उस के संस्थापकों ने भारत में प्रचलित शिक्षा को दूषित समझ कर ऋषि दयानन्द के शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को क्रिया में परिणत करने के लिए गुरु-कुल की स्थापना की थी। पर कई लोगों का यह विचार था, कि गुरुकुल केवल एक धार्मिक विद्यालय (डिवीनिटी कालेज) है। सामान्य शिक्षा देना गुरुकुल का काम नहीं है। अब सन् १६२१ में इस वाद विवाद और मत भेद का अन्त कर गुरुकुल के स्वरूप को सर्वसम्मत रूप से निर्णीत करने

का प्रयत्न किया गया और इसी के अनुसार २२ मार्च १६२१ को आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल के सम्बन्ध में निम्न लिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया:—

(१) "शिक्षा सम्बन्धी क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है कि वर्तमान गुरुकुल को ऐसे विश्वविद्यालय के रूप में परिणत किया जाय, जिससे भिन्न २ विषयों में शिक्षा दी जा सके। इसलिये निश्चय हुआ कि इस विश्वविद्यालय के साथ निम्न लिखित महा-विद्यालय सम्बन्धित होंगे:—

क. वेद महाविद्यालय,

ख. साधारण महाविद्यालय,

ग. आयुर्वैदिक महाविद्यालय,

घ. कृषि महाविद्यालय,

ङ. व्यवसाय महाविद्यालय,

(२). सं० क, ख का गुरुकुल में पहिले से परस्पर सम्बन्ध अधिक रहा है, अब वह उचित परिवर्तन के पश्चात् कांगड़ी में पृथक् पृथक् चलाये जावें। उनका वार्षिक व्यय विद्यालय के ऊपर लगभग बराबर हुआ करे। अब तक का एकत्रित धन व सम्पत्ति या जो आगे को प्राप्त हो, इन्हीं के अर्पित रहे, जिसका नाम गुरुकुल धन होगा, सिवाय उसके जो किसी विशेष कार्य के लिये प्राप्त हो।

(३). सं० ग, घ, ङ महविद्यालय उनके सम्बन्धी उचित धन प्राप्त होने पर तब प्रारम्भ किये जावेंगे जब यह सभा संचित धन और स्थानादि का विचार करके आज्ञा दे।

(४). सब विद्यालय जो सभा की ओर से या सभा की आज्ञानुसार गुरुकुलों के नाम खोले हुए हों या खोले जायें सं० ख. महाविद्यलय से सम्बन्धित होंगे।

(५). ग, घ, ङ महाविद्यालय कांगडी से बाहर खोले जायं और उन में गुरुकुल विद्यालय और अन्य विद्यालयों के छात्र अन्तरङ्ग सभा के बनाये नियमानुसार प्रविष्ट होंगे।

(६). आयुर्वैदिक और कृषि महाविद्यालयों के पृथक् पृथक् खुलने तक इन विषयों की जो पढ़ाई अब होती है, वह केवल विशेष विषय के रूप में ही साधारण महाविद्यालय में होती रहेगी परन्तु आवश्यक (Compulsary) विषयों में इन विद्यार्थियों की योग्यता न्यून न हो और उन्हें कोई पृथक् प्रमाणपत्र नहीं दिया जायगा, और इन विषयों पर वही धन व्यय होगा जो इनके लिये प्राप्त हो। गुरुकुल धन से जो वार्षिक व्यय अब होता है, वह दस वर्ष में १० प्रति शत के हिसाब से कम करके बन्द किया जायगा।

(७). इन सब की पाठविधि और नियम अन्तरङ्ग सभा बनायेगी।

(८). इस विश्वविद्यालय के प्रबन्ध के लिये एक विद्यासभा बनाई जावे। उसके बनने तक अन्तरङ्ग सभा कार्य्य करेगी"।

गुरुकुल का क्या उद्देश्य है, गुरुकुल का स्वरूप क्या है, क्या गुकुरुल केवल धार्मिक विद्यालय है—आदि सभी प्रश्नों का निर्णय आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में स्वीकृत हुवे इस प्रस्ताव से हो जाता है। गुरुकुल एक विश्वविद्यालय है, जिस में भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है और शिक्षा सम्बन्धी क्षमता को बढ़ाने के लिए सदा प्रयत्न किया जाता है। यह बात इस प्रस्ताव द्वारा बिलकुल स्पष्ट होगई है। साथ ही इस प्रस्ताव में यह भी निश्चय किया गया, कि गुरुकुल का संचालन करने के लिए एक पृथक् विद्यासभा का निर्माण किया जाय। यह निर्णय आगे चल कर किस प्रकार कार्य में परिणत हुआ, इस पर हम यथास्थान प्रकाश डालेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी फरवरी १९२० से अक्तूबर १९२१ तक लगभग डेढ़ वर्ष गुरुकुल में रहे। इस काल में अनेक नवीन बातें गुरुकुल में शुरु हुईं। "सद्धर्म प्रचारक" के बन्द होजाने के बाद गुरुकुल का कोई मुखपत्र नहीं था। अब "श्रद्धा" नामक नये साप्ताहिक पत्र का प्रारम्भ किया गया। श्रद्धा के सम्पादक स्वामी जी महाराज स्वयं थे। न केवल

आर्यजगत् में, अपितु, बाहर भी 'श्रद्धा' की खूब प्रसिद्धि हुई। गुरुकुल को लोक प्रिय बनाने में इस पत्र से बड़ी सहायता मिली। वेद सम्बन्धी अन्वेषण का कार्य गुरुकुल में प्रारम्भ करने का विचार तो बहुत दिनों से था पर उसे क्रिया में परिणत नहीं किया जा सका था। अब सन् १६२० में गुरुकुल में बाकायदा अनुसन्धान विभाग खोल दिया गया। एक योग्य स्नातक को "वैदिक कोष" तैयार करने को नियत किया गया और श्री पंडित देवशर्मा जी वैदिक खोज के लिये विशेषरूप से रक्खे गये। यह भी यत्न किया गया कि विविध गुरुकुलों को एक सूत्र में बांधा जाय। गुरुकुल वृन्दावन के कार्यकर्ताओं से इस विषय में बातचीत का भी प्रारम्भ हुआ।

पर स्वामी जी देर तक गुरुकुल में न रह सके। इस समय देश में प्रबल असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो रहा था। महात्मा गांधी ने ६ मास में स्वराज्य प्राप्ति का प्रोग्राम देश के सम्मुख रक्खा था। सारे देश में एक नई जागृति, नई चेतना उत्पन्न हो रही थी। यद्यपि स्वामी जी के महात्मा गांधी से अनेक विषयों में मतभेद थे, पर इस जागृति के काल में वह स्वराज्य आन्दोलन से अपने को पृथक् नहीं रख सके। प्रधान रामकृष्ण जी को एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"इस समय मेरी सम्मति में 'असहयोग' की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि के भविष्य का निर्भर है। यदि आन्दोलन अकृतकार्य हुआ और महात्मा गांधी को सहायता न मिली, तो देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न ५० वर्ष पीछे जा

पड़ेगा। यह जाति के जीवन व मरण का प्रश्न हो गया है, इसलिये मैं इस काम में शीघ्र ही लग जाऊंगा"।

असहयोग आन्दोलन में कार्य करने की हार्दिक प्रेरणा ही थी, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी को गुरुकुल से बाहर ले गई। यदि स्वामी जी कुछ समय तक और गुरुकुल के कर्णधार रहते, तो अपने अनेक 'असिद्ध स्वप्नों' को पूर्ण कर सकते। स्वामी जी गुरुकुल में आयुर्वेद, कृषि और व्यवसाय महाविद्यालय स्थापित करना चाहते थे। आयुर्वेद और कृषि की श्रेणियां तो खोल भी दी गई थीं। इन में से आयुर्वेद की श्रेणी इस समय एक पृथक् महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित भी हो चुकी है। पर कृषि और व्यवसाय के महाविद्यालय अब तक गुरुकुल में नहीं खुल सके। स्वामी जी ने 'श्रद्धा' के पृष्ठों में बार-बार अपनी यह इच्छा प्रकट की है, कि गुरुकुल में व्यवसाय महाविद्यालय (Industrial College) शीघ्र खुल जाना चाहिये। कला भवन के लिये वे बार बार अपील कर चुके हैं। अपने बलिदान से दो ढाई मास पूर्व स्वामी जी ने 'माई स्पेशल अपील' शीर्षक से एक लेख अपने अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'लिबरेटर' में लिखा था। इस में उन्होंने शिल्प व व्यवसाय महाविद्यालय के लिए धन की विशेष रूप से अपील की थी।

पं० विश्वम्भर नाथ जी

१९२१ में स्वामी श्रद्धानन्द जी के चले जाने पर पं० विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता नियत हुए।

पण्डित जी आर्यसमाज के पुराने कार्य-कर्ता थे। गुरुकुल की स्थापना के समय से ही आप गुरुकुल की स्वामिनी सभा के सदस्य थे और अनेक वार कोषाध्यक्ष तथा उपप्रधान के पद पर नियत हो चुके थे। महात्मा मुन्शीराम जी के सन्यास लेने पर दो वर्ष के लिए वे सभा के प्रधान भी रहे। पण्डित जी सभा के ठोस कार्यकर्ता थे और महात्मा मुन्शीराम जी को इन पर दृढ़ विश्वास था। जिस समय महात्मा जी सन्यास लेने लगे, तो पण्डित जी को गुरुकुल में आकर कार्य संभालने के लिये प्रेरणा करते हुए उन्होंने लिखा था कि उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, जो मेरे और तुम्हारे लिये इतना प्रिय रहा, तुम्हें साहस-पूर्वक बाहर निकल आना चाहिये। अब १६२१ में पण्डित जी ने गुरुकुल का कार्य संभाला। आर्य समाज के वीतराग सन्यासी स्वामी सत्यानन्द जी आचार्य नियत हुए और शिक्षा सम्बन्धी कार्य उपाचार्य के रूप में प्रो० रामदेव जी के हाथ में रहा। १६२४ में स्वामी सत्यानन्द जी के त्यागपत्र दे देने पर प्रो० रामदेव जी आचार्य बने और उपाचार्य का कार्य पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार के हाथ में आया।

श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी १६२१ से १६२७ तक गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता रहे। यह काल गुरुकुल के इतिहास में बड़ा घटना-पूर्ण है। आन्तरिक प्रबन्ध और व्यवस्था की दृष्टि से इस समय में गुरुकुल की बहुत उन्नति हुई। पण्डित विश्वम्भरनाथ जी आर्थिक प्रबन्ध में बहुत दक्ष थे। उन्होंने गुरुकुल के बजट को नये ढंग से व्यवस्थित किया

और गुरुकुल के व्यय को ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण और शिक्षा—इन दो विभागों में नियमित रूप से विभक्त कर यह नियम बनवा दिया कि एक का धन दूसरे विभाग में व्यय न हो। भरण-पोषण के लिये केवल वह रुपया व्यय हो जो संरक्षकों से फीस द्वारा या छात्र-वृत्तियों की आमदनी से प्राप्त होता है। शिक्षा के लिए व्यय, दान तथा उपाध्याय वृत्तियों के सूद का धन ही हो। साथ ही खर्च को कम करने के लिए और गुरुकुल के आय तथा व्यय को बराबर करने के लिये बहुत उद्योग किया गया।

गुरुकुल को बाकायदा विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर देने का प्रस्ताव सन् १९२१ में पास किया जा चुका था। अब १९२३ में शिक्षा-विषयक प्रबन्ध के लिए पृथक् शिक्षा-पटल (Board of Education) की स्थापना की गई। शिक्षा-पटल में गुरुकुल के अध्यापकों के अतिरिक्त तीन अन्य तत्वों का समावेश किया गया—

१. अन्तरङ्ग सभा के प्रतिनिधि,

२. स्नातक मण्डल के प्रतिनिधि,

३. बाहर के विद्वान्।

शिक्षापटल का निर्माण निम्न लिखित प्रकर से करने की व्यवस्था की गई।

(१) आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रधान ।

(१) गुरुकुल कांगड़ी का मुख्याधिष्ठाता ।

(१) गुरुकुल कांगड़ी का आचार्य ।

(३) गुरुकुल कांगड़ी के प्रत्येक महाविद्यालय का अध्यक्ष ।

(६) अन्तरङ्ग सभा द्वारा निर्वाचित ६ महानुभाव जिन में से न्यून से न्यून ३ सज्जन शिक्षाकला में प्रवीण होंगे ।

(३) सम्बन्धित महाविद्यालयों के उपाध्यायों की ओर से निर्वाचित तीन प्रतिनिधि ।

(१) दयानन्द-सेवासदन के सदस्यों और गुरुकुल के स्थिर सेवकों का निर्वाचित एक प्रतिनिधि ।

(२) गुरुकुल के स्नातकों की ओर से निर्वाचित दो प्रतिनिधि ।

(१) गुरुकुल विश्वविद्यालय का प्रस्तोता ।

गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्याधिष्ठाता अपने पदाधिकार से शिक्षापटल का प्रधान और प्रस्तोता मन्त्री होता है । कार्यारम्भ के लिए ७ उपस्थिति आवश्यक है । शिक्षापटल के बन जाने से गुरुकुल में शिक्षा विषयक क्षमता बढ़ने में बहुत सहायता मिली । पटल के पहले मन्त्री (प्रस्तोता)

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक पं० महानन्द जी सिद्धान्तालंकार नियत किये गये।

कन्या गुरुकुल व अन्य नये शाखा गुरुकुल

इस काल में गुरुकुल की अनेक नई शाखायें खुलीं। १६२३ में दीवाली के दिन देहली नगर के दरियागंज मुहल्ले में एक बड़ी कोठी किराये पर लेकर कन्या-गुरुकुल की स्थापना की गई। १६२१ में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव के अवसर पर यह घोषणा की थी, कि दिल्ली निवासी सेठ रघुमल जी कन्यागुरुकुल के लिये एक लाख रुपया दान देने को उद्यत हैं। सेठ रघुमल जी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनन्य भक्त थे। इससे पूर्व १६१२ में वे दिल्ली के समीप गरुकुल की शाखा खोलने के लिये एक लाख का दान दे चुके थे। अब उन्होंने ही कन्या गुरुकुल की स्थापना के लिये भी आर्य प्रतिनिधि सभा को प्रोत्साहित किया। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के समय से ही कन्याओं के लिये पृथक् गुरुकुल खोलने का विचार चला आता था। महात्मा मुंशीराम जी देर से इसके लिये आन्दोलन कर रहे थे। सद्धर्मप्रचारक में उन्होंने अनेक बार आर्य जनता का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। इसी लिये गुरुकुल कांगड़ी की नियमावली में यह टिप्पणी देर से प्रकाशित हो रही थी, कि साधन जुट जाने पर कन्याओं की शिक्षाओं के लिये

भी पृथक् गुरुकुल की स्थापना कर दी जायगी। अब सेठ रघुमल जी के दान से सन् १९२३ में इस विचार को क्रिया में परिणत होने का अवसर मिला।

चार साल तक कन्या गुरुकुल दिल्ली में रहा। पहिली पांच श्रेणियां वहां शुरू में ही खोल दी गई थीं। धीरे धीरे आठ श्रेणियों का विद्यालय विभाग और तीन उच्च कक्षाओं का महाविद्यालय विभाग भी स्थापित किया गया।

पर दिल्ली नगर कन्या गुरुकुल के लिये उपयुक्त स्थान नहीं था। अतः चार साल बाद उसे देहरादून ले आया गया। शुरू में दो कोठियां किराये पर लेकर इस संस्था को वहां स्थापित किया गया। पर कोठियों के कमरे गुरुकुल के लिये पर्याप्त नहीं थे। इस लिये टीन के शैड बनवा कर उन से काम चलाया गया। १९३० में देहरादून में राजपुर रोड पर दो बड़ी कोठियां कन्या गुरुकुल के लिये क्रय कर ली गई। इन कोठियों के साथ ज़मीन पर्याप्त थी। धीरे धीरे इस में नई इमारतें बनाई गईं। इस समय देहरादून में कन्या गुरुकुल की भूसम्पत्ति कई लाख कीमत की है, और यह संस्था बहुत उन्नति कर चुकी है।

गुजरात प्रान्त के निवासियों की चिरकाल से इच्छा थी, कि गुरुकुल कांगड़ी की एक शाखा उनके प्रान्त में भी खोली जावे। श्री पं० ईश्वरदत्त विद्यालंकार, श्री दयाल जी

लल्लू भाई और श्री० भीणा भाई देवा भाई के अनथक परिश्रम से सन् १६२३ में गुरुकुल के लिये पच्चीस हजार रुपये नकद जमा हुए और गुजरात में गुरुकुल सभा का निर्माण हुआ। सूरत जिले की बारदौली तहसील में पूर्णा नदी के सुरम्य तट पर १८ फरवरी, सन् १६२४ को गुरुकुल की एक शाखा स्थापित की गई। सूपा ग्राम के निकट होने के कारण इसका नाम 'गुरुकुल सूपा' रखा गया। गुरुकुल की आधार शिला श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के कर कमलों द्वारा रखी गई थी। गुरुकुल सूपा की उन्नति बड़ी तेजी से हुई। अब इस में पूरी दस श्रेणियां हैं। और प्रतिवर्ष इस के विद्यार्थी गुरुकुल कांगड़ी की अधिकारी परिक्षा पास कर महाविद्यालय विभाग में प्रविष्ट होते हैं।

सन् १६२४ में ही हरियाणा प्रान्त में झज्झर नामक स्थान पर गुरुकुल की एक और शाखा स्थापित हुई। इस की स्थापना में वहां के महाशय विश्वम्भरनाथ जी, स्वामी परमानन्द जी और स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने बड़ा पुरुषार्थ किया।

सन् १६२४ में गुरुकुल कांगड़ी की एक और शाखा भटिण्डा में खुली। इस की भी आधारशिला श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा रखी गई।

इस प्रकार गुरुकुल की चार नई शाखायें ११२३-२४

में स्थापित हुईं। गुरुकुल के विस्तार की दृष्टि से ये वर्ष बड़े महत्व के हैं।

सन् १९२४ में जहां गुरुकुल का इतना विस्तार हुआ, वहां गुरुकुल पर सब से बड़ी विपत्ति भी इसी वर्ष आई। गुरुकुल गंगा के तट पर स्थित था। सितम्बर १९२४ में असाधारण वर्षा के कारण गंगा में भयंकर बाढ़ आई और गुरुकुल की बहुत सी इमारतें नष्ट हो गईं। उन दिनों गुरुकुल में बड़ी छुट्टियां थीं। विद्यार्थी प्राय: बाहर गये हुए थे। जो व्यक्ति वहां थे, उन की बड़ी कठिनता से रक्षा हुई। इमारतों का एक लाख से ऊपर का नुकसान हुआ। इस भयंकर बाढ़ के कारण गुरुकुल के स्थान परिवर्तन का प्रश्न बहुत महत्व-पूर्ण होगया। प्रतिनिधि सभा में इस विषय में अनेक पक्ष थे। कुछ लोग गुरुकुल को पंजाब में ले जाना चाहते थे। कइयों का मत दिल्ली के समीप गुरुकुल बनाने का था। अनेक महानुभाव कांगड़ी ग्राम के समीप ही दूसरी जगह पर गुरुकुल की नई इमारत बनाना चाहते थे। पर पं० विश्वम्भरनाथ जी का पक्ष गंगा के पश्चिमीय तट पर सुरक्षित स्थान पर गुरुकुल रखने का था। पण्डित जी का पक्ष बहुमत से पास हो गया और गंगा की नहर के साथ गुरुकुल के लिए नई भूमि खरीदी गई। अब तक इस नई भूमि पर पौने चार लाख की लागत की इमारत बन चुकी हैं और अनेक इमारतें अभी बननी अवशिष्ट हैं।

१९२५ में गुरुकुल में 'व्रताभ्यास' की परिपाटी डाली गई। इसका उद्देश्य यह है कि ब्रह्मचारी अपने वैयक्तिक और सामाजिक कर्त्तव्यों को दण्ड के भय से नहीं, किन्तु उन की उपयोगिता और महत्व समझ कर पूरा करें। प्रत्येक ब्रह्मचारी के पास एक व्रताभ्यास पंजिका रहती है, जिस में प्रतिदिन वह स्वयं लिखता है कि किन २ नियमों का उसने पालन किया, किन २ का नहीं किया। जिन नियमों का पालन न किया हो उन के सम्बन्ध में कारण भी देना होता है। मास के अन्त में इन पंजिकाओं के आधार पर अङ्क भी दिए जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल का यह मौलिक परीक्षण है। अखिल एशियाटिक शिक्षापरिषद् में इस पद्धति को बहुत पसन्द किया गया और इसे सर्वत्र प्रारम्भ करने की शिफारिश भी की गई थी।

रजत-जयन्ती

१९२७ में गुरुकुल को स्थापित हुए पूरे २५ वर्ष हो गये थे। अतः इस वर्ष का वार्षिकोत्सव रजतजयन्ती (सिल्वर जुबली) के रूप में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। इस में ५० हजार से अधिक यात्री विविध प्रान्तों से सम्मिलित हुए। इन में महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, श्री निवास आयंगर, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज, डा० मुंजे और श्री शंकरलाल बैंकर के नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं । इन के अतिरिक्त प्रिंसीपल ध्रुव, साधुवर वास्वानी, डा० अविनाशचन्द्र जी दास, श्रीयुत् पीयूषकान्ति घोष आदि अनेक प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक भी जयन्ती महोत्सव में पधारे थे। आर्यसमाज के तो प्राय: सभी नेता, सन्यासी और विद्वान इस अवसर पर उपस्थित थे। गुरुकुल के २५ सालों के उत्सवों में यह पहला ही उत्सव था, जब इस संस्था के संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज उपस्थित नहीं थे। जयन्ती महोत्सव से लगभग तीन मास पूर्व २३ दिसम्बर १९२६ को दिल्ली में उनका बलिदान हुआ था। इस बलिदान के कारण जयन्ती महोत्सव के आनन्द पूर्ण समारोह में एक गम्भीर वेदना सी मिली हुई थी। जयन्ती महोत्सव बड़ी ही सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। उस अवसर पर १५३०००) नकद प्राप्त हुवे और १३००००) की प्रतिज्ञाएं हुईं। इन प्रतिज्ञाओं का प्राय: सारा धन पीछे से प्राप्त हो गया था।

रजतजयन्ती को सफलता के साथ पूर्ण करवाकर श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल से विदा हो गये। पण्डित जी का यह सिद्धान्त था, कि किसी व्यक्ति को एक संस्था में ५ वर्ष से अधिक संचालक रूप में नहीं रहना चाहिये। इसी के अनुसार उन्होंने त्याग पत्र दे दिया और श्री आचार्य रामदेव जी उन के स्थान पर मुख्याधिष्ठाता नियत हुए।

आचार्य रामदेव जी

आचार्य रामदेव जी सन् १९०५ में गुरुकुल आए थे उन्होंने गुरुकुल का कार्य अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया था। पर वे लगन के पक्के थे और गुरुकुल शिक्षाप्रणाली पर उन्हें अगाध विश्वास था। गुरुकुल के लिये रात दिन एक कर कार्य करने में उन्हें आनन्द आता था। इसी का परिणाम हुआ कि गुरुकुल के संचालन में उनका हाथ निरन्तर बढ़ता ही गया। वे अध्यापक से मुख्याध्यापक, फिर उपाचार्य, फिर आचार्य और अब १९२७ में मुख्याधिष्ठाता के पद पर अधिष्ठित हुए। इन २२ वर्ष में वे शिक्षाविषयक प्रबन्ध के प्रायः कर्त्ताधर्ता ही रहे। यही नहीं, गुरुकुल के संचालन में भी उनका प्रमुख भाग रहा। धन एकत्रित करने में वे महात्मा मुंशीराम जी के दांये हाथ थे। उनके व्याख्यानों की समाज में धूम थी। उनमें एक प्रकार की अद्भुत शक्ति थी, जो अटल विश्वास, त्याग और लगन से मनुष्य में विकसित होती है।

सन् १९२७ से १९३३ तक आचार्य रामदेव जी गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता रहे। इस काल में गुरुकुल की नई इमारत के लिए धन एकत्रित किया गया। आचार्य रामदेव जी के प्रयत्न से लाखों रुपया गुरुकुल को दान में

मिला। नई भूमि का क्रय कर उस पर इमारतें बननी शुरू हुईं। सन् १६३० में गुरुकुल अपनी पुरानी भूमि को सदा के लिये नमस्कार कर नये स्थान पर आ गया। गंगा के तट वाली उस पुरानी भूमि का कुलवासियों के हृदय में एक विशेष आकर्षण था। उस स्थान पर तपस्वी मुंशीराम ने अपने तप को सिद्ध किया था। भरे हृदयों से कुलवासियों ने उस स्थान का परित्याग किया और एक बृहद् यज्ञ के साथ नवीन भूमि में निवास का आरम्भ हुआ।

नई भूमि में गुरुकुल की जो इमारत तैयार हुई, वह अत्यन्त विशाल है। वर्तमान कीमतों को दृष्टि में रखते हुए उसके मूल्य का ब्यौरा इस प्रकार है—

नाम इमारत	वर्तमान मूल्य
कालेज-भवन	२१६१६२ रु०
व्याख्यान-भवन	३००००० रु०
आयुर्वेद महाविद्यालय	६६४५५ रु०
शल्य-क्रिया-भवन	१६६५० रु०
शवच्छेदन भवन	१५३५० रु०
रोगी-गृह	३१८४२ रु०
विद्यालय-भवन	७६१४० रु०
महाविद्यालय-आश्रम	१२४६८६ रु०
महाविद्यालय-भोजनालय	२५४६७ रु०

विद्यालय-आश्रम	१९७३९६ रु०
विद्यालय-भोजनालय	३२३२८ रु०
व्यायामशाला	५७६२ रु०
यज्ञशाला	२०९२२ रु०
चिकित्सालय	४३६५० रु०
कार्यालय	३५९१४ रु०
स्नानागार	९०८७ रु०
उपाध्याय निवास-गृह	१३२८६७ रु०
अध्यापक निवास-गृह	१३५७८० रु०
कर्मचारी निवास-गृह	१५६९६९ रु०
श्रद्धानन्द-द्वार	२४१३५ रु०
गौशाला	१०१२७६ रु०
मुद्रणालय-भवन	५४५३ रु०
कुएं व जलागार	१०७५४९ रु०
फार्मेसी-इमारत	५७००० रु०
सर्वयोग	१९,२७,२६८ रु०

बीस लाख के लगभग मूल्य की इमारतों को तैयार करने के लिये धन एकत्र करना साधारण बात न थी। आचार्य रामदेव जी ने इसके लिये अनथक परिश्रम किया। उन्हीं के प्रभाव व श्रम का यह परिणाम था, कि आर्य-जनता ने गुरुकुल की नई इमारतों के लिये दिल खोलकर दान दिया।

गुरुकुल के अध्यपकों व अन्य गुरुकुलप्रेमियों ने भी धन एकत्रित करने में आचार्य जी को सहयोग दिया। जिन महानुभावों के दान से गुरुकुल की नई इमारत तैयार हुई, उन में से कतिपय के नाम उल्लेखनीय हैं—

श्री० सेठ जुगलकिशोर जी बिडला	८८२५० रु०
श्री० भाई टेकचन्द जी नागिया	४५००० रु०
श्री० राजाधिराज नाहरसिंह जी	१५००० रु०
श्री० नानजी भाई कालीदास	११३४५ रु०
श्रीमती रतनी देवी जी	११५०० रु०
श्रीमती सत्यभावां देवी जी	१३७६० रु०
श्री० बख्शी झण्डामल जी	१०००० रु०
श्री० विश्वम्भर नाथ शर्मा	७६६५ रु०
श्री० ए० आर० डाबर	६२०० रु०
श्री० रघुनाथ राय जी ठेकेदार	५००० रु०
श्री० एम० बी० शर्मा	६००० रु०
श्री० पन्नालाल जी रस्तौगी	६३४५ रु०
श्री० सेठ छाजूराम जी	६००० रु०
श्री० वजीरचन्द बालमुकुन्द	८००० रु०
श्री० सेठ गण्डूमल मोतीराम	७००० रु०
श्री० सेठ दीपचन्द जी पोद्दार	११२०० रु०

इसी प्रकार अन्य भी अनेक महानुभावों ने अत्यन्त उदारतापूर्वक इस समय गुरुकुल को नई इमारत के लिये दान

दिया। उन्हीं प्रयत्नों से भयंकर जल-प्रवाह (बाढ़) द्वारा हुआ नुकसान पूरा हो सका।

सत्याग्रह अन्दोलन और गुरुकुल

सन् १९३० में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम का प्रारम्भ हुआ। सारे भारत में एक आग सी धधक उठी। हजारों की संख्या में देशभक्त लोग सत्याग्रह आन्दोलन में कैद होने लगे। सरकारी स्कूल और कालेज तक इसके प्रभाव से न बच सके। इस दशा में यह कैसे सम्भव था कि गुरुकुल पर इस देशव्यापी आन्दोलन का प्रभाव न होता। गुरुकुल एक राष्ट्रीय संस्था है। जब कभी देश, जाति व धर्म के लिए त्याग की आवश्यकता हुई, गुरुकुल कभी पीछे नहीं रहा। १९३० का सत्याग्रह संग्राम नवयुवकों को त्याग और तपस्या के लिए आह्वान कर रहा था। गुरुकुल के विद्यार्थी ऐसे समय में शान्त नहीं रह सके। उन दिनों ब्र० सर्वमित्र १४ वीं श्रेणी में पढ़ते थे। वह एक अत्यन्त होनहार विद्यार्थी थे। इनके नेतृत्व में गुरुकुल के विद्यार्थियों ने देश के प्रति अपने कर्तव्यपालन का निश्चय किया। गुरुकुल के अधिकारी इसके लिए अनुमति नहीं दे सकते थे, क्योंकि गुरुकुल का एक संस्था के रूप में सत्याग्रह संग्राम में भाग लेना सम्भव नहीं था अतः अधिकारियों से अनुमति प्राप्त न होने पर भी विद्यार्थियों ने स्वराज्य-संग्राम में भाग लिया और विवश होकर कुछ महीनों के लिए गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में अवकाश करना पड़ा। बहुत से विद्यार्थी

कैद होगए और ब्र० सर्वमित्र तथा उनके साथी ब्र० सत्य-भूषण देहातों में काम करते हुए बीमार पड़े और स्वर्ग सिधारे। घोर विपत्तियों और प्रचण्ड महामारी की पर्वाह न कर जिस ढंग से इन ब्रह्मचारियों ने अपने प्राणों को मातृभूमि के लिए स्वाहा किया, उसे हम 'बलिदान' कहें तो अनुचित न होगा।

कुछ मास के असाधारण अवकाश के बाद गुरुकुल तो खुल गया, परन्तु अनेक विद्यार्थी सत्याग्रह-संग्राम में लगे रहे। सत्याग्रह के स्थगित होने पर ये फिर गुरुकुल में प्रविष्ट हुए और अपनी पढ़ाई को पूर्ण किया।

प्रबन्ध समिति

सन् १९३२ में आचार्य रामदेव जी भी सत्याग्रह में कार्य करने के लिए गुरुकुल से चले गए। उन के बाद प्रतिनिधि सभा ने किन्हीं एक महानुभाव को गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता नियत नहीं किया, अपितु गुरुकुल का प्रबन्ध एक उपसमिति के सुपुर्द किया। श्रीयुत देवराज जी सेठी उन दिनों गुरुकुल के सहायक मुख्याधिष्ठाता थे। उन्हें उपसमिति का मंत्री बनाया गया। उनके अतिरिक्त श्री पं० चमूपति जी एम० ए और श्री पं० देवशर्मा जी विद्यालङ्कार इस में और रक्खे गए। उपसमिति का प्रधान पद श्री पं० चमूपति जी को दिया गया। एक मुख्याधिष्ठाता के स्थान पर तीन महानुभावों की उपसमिति नियत करना गुरुकुल के इतिहास में एक नया परीक्षण था, यह सफल न हो सका।

कारण यह था कि समिति के तीनों सदस्यों के विचार एक सदृश नहीं थे उन में मत भेद था इस समस्या का अन्त तब हुआ जब श्री पं० देवशर्मा जी और श्रीयुत देवराज जी सेठी त्याग-पत्र देकर विस्तृत क्षेत्र में देश सेवा के लिये बाहर चले गए। अब पं० चमूपति जो मुख्याधिष्ठाता और आचार्य दोनों पदों पर कार्य करने लगे। आचार्य रामदेव जी के जाने पर गुरुकुल का संचालन करने के लिए जो उप-समिति बनी थी, वह पूरा एक वर्ष भी कार्य न कर सकी और सन् १६३४ के अन्तिम दिनों में गुरुकुल का संचालन भार श्री पं० चमूपति जी के पास आगया।

श्री पं० चमूपति जी आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् और प्रचारक थे। गुरुकल से सम्बन्ध बहुत पुराना था। अब से लगभग बीस वर्ष पूर्व वे गुरुकुल मुल्तान के मुख्याधिष्ठाता बने थे और उस गुरुकुल का संचालन करने में उन्हें बड़ी सफलता मिली थी। आचार्य रामदेव जी उनके गुणों पर मुग्ध हो कर उन्हें लाहौर ले आये थे और उन्हें 'दयानन्द सेवा-सदन' का आजीवन सदस्य बनने के लिए तैय्यार किया था। अनेक वर्षों तक पंडित जी ने लाहौर में 'आर्य' का सम्पादन किया। वक्ता और लेखक के रूप में आर्यसमाज में उन की खूब ख्याति हुई। सन् १६२७ में वे गुरुकुल में आर्य-सिद्धान्त के प्रोफ़ेसर नियत होकर आये और 'वैदिक-मैगज़ीन' के सम्पादन में भी आचार्य रामदेव जी की सहायता करते रहे। रामदेव जी के जेल

जाने पर गुरुकुल के सञ्चालन का कार्य उन के सुपुर्द किया गया और उन्होंने योग्यता से इस कार्य को निभाया।

इन वर्षों में भी गुरुकुल की खूब उन्नति हुई। हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी में प्रतिवर्ष हिन्दी और संस्कृत में वाद-विवाद होते हैं। इन में विविध यूनिवर्सिटियों के प्रतिनिधि सम्मिलित होकर किसी पूर्व निश्चित विषय पर वादविवाद करते हैं। सर्वोत्तम वक्ताओं को पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं और जिस शिक्षणालय के विद्यार्थी सब से अधिक अंक प्राप्त करते हैं, उन्हें 'विजयोपहार' प्रदान किया जाता है। सन् १९३१ से १९३४ तक गुरुकुल के विद्यार्थी इन अन्तर्विश्वविद्यालय वादविवादों में सम्मिलित हुए और निरन्तर विजयी रहे। केवल बनारस में ही नहीं, अपितु मेरठ, दिल्ली आदि कई शिक्षा केन्द्रों में इस प्रकार के वादविवादों में गुरुकुल के विद्यार्थी 'विजयोपहार' जीत कर लाये।

सन् १९३१ में गुरुकुल को 'अधिक सर्वप्रिय बनाने के साधनों की सिफारिश करने के लिए' महात्मा नारायण स्वामी जी की अध्यक्षता में एक कमीशन आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा नियुक्त हुआ। दो वर्ष तक परिश्रम कर इस कमीशन ने एक रिपोर्ट तैयार की।

विद्या-सभा की स्थापना

सन् १९३५ में गुरुकुल के प्रबन्ध के सम्बन्ध में बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। गुरुकुल के लिए पृथक विद्या-सभा स्थापित करने का विचार बहुत पुराना है। महात्मा

मुन्शीराम जी ने इस के लिए सन् १९१० से ही आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। १९२१ में जिस प्रस्ताव द्वारा प्रतिनिधि सभा ने गुरुकुल को एक विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित किया, उस में ही यह भी सिद्धान्त रूप में स्वीकृत कर लिया, कि गुरुकुल के लिए विद्यासभा का पृथक रूप से निर्माण होना चाहिये। १९२४ में विद्यासभा के संगठन का खाका तैयार हुआ और प्रतिनिधि सभा में यह स्वीकृत भी हो गया। पर कुछ कारणों से उसे क्रिया में परिणत नहीं किया जा सका। १९३५ में विद्यासभा की स्थापना के लिए फिर प्रबल आन्दोलन हुआ। आर्यप्रतिनिधि सभा का कार्य क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया था कि एक कार्यकारिणी समिति (अन्तरंग सभा) सब विषयों पर यथोचित ध्यान नहीं दे सकती थी। साथ ही, गुरुकुल अब एक अच्छे बड़े विश्वविद्यालय के रूप में विकसित हो गया था। उस के लिय एक ऐसी सभा की आवश्यकता थी जिस का मुख्य कार्य गुरुकुल का ही सञ्चालन हो। स्नातक मण्डल ने इसके लिए बड़ा प्रबल आन्दोलन किया। सन् १९३५ आर्यप्रतिनिधि सभा के नये निर्वाचन का साल था। इस का लाभ उठा कर विद्यासभा के पक्षपाती लोग बड़ी संख्या में प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आये। परिणाम यह हुआ, कि १९३५ के प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में गुरुकुल के लिये पृथक् विद्यासभा स्थापित कर ली गई। गुरुकुल के इतिहास में यह बात बहुत महत्व की हुई।

विद्यासभा की रचना निम्न लिखित प्रकार से करने की व्यवस्था की गई—

(१) विद्यासभा के कुल सदस्यों की संख्या २७ हो।

(२) इन २७ सदस्यों में से न्यून से न्यून १८ आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब के सभासद् हों।

(३) आर्य प्रतिनिधि सभा के निम्नलिखित पदाधिकारी अपने पद के कारण विद्यासभा के सदस्य हों—

क. आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान

ख. " के तीनों उपप्रधान

ग. " के मंत्री

घ. " के कोषाध्यक्ष

(४) इन छः पदाधिकारियों के अतिरिक्त कम से कम १२ व्यक्ति आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा विद्यासभा के लिये निर्वाचित किये जावें। इन सदस्यों को निर्वाचित करते हुए यह ध्यान रखा जावे, कि ये सदस्य विद्या आदि विशेष गुणों से संपन्न हों।

(५) साथ ही, गुरुकुल के निम्नलिखित पदाधिकारी भी अपने पद के कारण विद्यासभा के सदस्य हों—

क. गुरुकुल कांगड़ी का मुख्याधिष्ठाता

ख. गुरुकुल कांगड़ी का आचार्य

ग. कन्या गुरुकुल का मुख्याधिष्ठाता

घ. कन्या गुरुकुल की आचार्या

(६) इनके अतिरिक्त शेष पांच सदस्यों की नियुक्ति निम्नलिखित प्रकार से की जाय—

क. गुरुकुल के विद्यार्थियों व विद्यार्थिनियों के संरक्षकों में से एक।

ख. गुरुकुल के स्नातकों व स्नातिकाओं में से तीन, जिनमें एक अवश्य स्नातिका हो।

ग. गुरुकुल के उपाध्यायवर्ग में से एक।

विद्यासभा के सदस्य केवल वही बन सकें। जिन्हें गुरुकुल शिक्षाप्रणाली से वास्तविक प्रेम हो। और जो स्वयं अपने बालकों व बलिकाओं को गुरुकुल में पढ़ाने के लिये उद्यत हो कर गुरुकुल–प्रेम का साक्षात् प्रमाण देने को उद्यत हों, यह भी व्यवस्था की गई।

विद्या सभा के बन जाने से गुरुकुल का प्रबन्ध व संचालन आर्य प्रतिनिधि सभा के वेद प्रचार विभाग से पृथक् होगया। इससे गुरुकुल की समस्याओं पर अधिक ध्यान दे सकना व इस संस्था की उन्नति के लिये प्रयत्न कर सकना अधिक सम्भव हो गया।

श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

१६३५ के अप्रैल मास में पं० चमूपति जी ने गुरुकुल से त्याग पत्र दे दिया था। नवनिर्मित विद्यासभा ने उनके स्थान पर पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार को मुख्याधिष्ठाता और पं० देवशर्मा जी विद्यालंकार को आचार्य पद पर नियत किया। पं० सत्यव्रत जी गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक हैं और सन् १६२३ से गुरुकुल में कार्य कर रहे हैं। अनेक वर्षों तक वे गुरुकुल के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) रहे थे। अतः शिक्षा विषयक प्रबन्ध में उन का देर से हाथ था। अच्छे वक्ता और लेखक होने के कारण न केवल आर्यसमाजिक क्षेत्र में अपितु बाहर भी उनकी अच्छी ख्याति थी। पं० देवशर्मा जी भी गुरुकुल के स्नातक हैं और सन् १६२१ से कार्यकर्त्ता के रूप में भी गुरुकुल से उनका सम्बन्ध था अनेक बार पहिले भी वे, उपाचार्य व 'समायिक-आचार्य' का कार्य कर चुके थे। त्याग, तपस्या और देश सेवा के लिये उनकी दूर दूर तक प्रसिद्धि थी। सदाचार और त्याग तपस्या के लिये महात्मा गांधी भी उनका सिक्का मानते थे। पं० देवशर्मा जी एक सच्चे महात्मा हैं, जिन्होंने अपना जीवन देश और धर्म की सेवा के लिये अर्पण किया हुआ है।

पं० सत्यव्रत जी ने गुरुकुल की उन्नति के लिये विशेष उद्योग किया। चन्दा करके धन एकत्र करना कितना कठिन

है, इस बात का उन्हें अच्छी तरह अनुभव था। वे इस प्रयत्न में थे, कि आर्थिक दृष्टि से गुरुकुल को स्वावलम्बी बनाया जाय, और खर्च चलाने के लिये केवल चन्दे पर आश्रित रहने की आवश्यकता न रहे। उन्होंने यह विचार किया, कि यदि गुरुकुल में व्यवसाय विभाग को भली भांति उन्नत किया जाय, तो इतनी आमदनी की जा सकती है कि गुरुकुल बहुत कुछ आत्म निर्भर हो जाय। गुरुकुल में आयुर्वैदिक फार्मेसी कई सालों से स्थापित थी। साथ ही, पुस्तक प्रकाशन विभाग और प्रेस भी यहां विद्यमान थे। रसायन विज्ञान के प्रोफेसर श्री फकीरचन्द्र बेहन को व्यावसायिक रसायन का क्रियात्मिक अनुभव था, और वे स्याही, फिनाइल आदि तैयार करने के लिये सदा उत्सुक रहते थे। पं० सत्यव्रत जी ने यह अनुभव किया, कि यदि इन विभागों पर भली-भांति ध्यान देकर इन्हें उन्नत किया जाय, तो गुरुकुल आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है। इसके लिये उन्होंने व्यवसाय-पटल का संगठन किया, और स्वयं आयुर्वैदिक फार्मेसी आदि के विकास में विशेष दिलचस्पी लेनी शुरू की। परिणाम यह हुआ, कि गुरुकुल के इस विभाग ने बहुत उन्नति की और कुछ ही समय में गुरुकुल को अच्छी धन राशि कमा कर प्रदान करने लगे।

फार्मेसी की आमदनी में इन सालों में किस प्रकार वृद्धि हुई, यह निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट हो जायगा—

साल	आमदनी
१९३५	३०००)
१९३६	३४५०)
१९३७	५०००)
१९३८	५०००)
१९३९	७०००)
१९४०	१३३४२)

प्रोफ़ेसर फकीरचन्द्र जी की अध्यक्षता में व्यावसायिक रसायन विभाग की पृथक् रूप से स्थापना की गई। इस विभाग द्वारा सब प्रकार की स्याहियां, साबुन और फिनाइल तैयार किये जाने लगे। जनता ने इनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया। अनेक म्युनिसिपैलिटियों, बैंकों व व्यापारिक संस्थाओं ने इन वस्तुओं की अपनी आवश्यकताओं को गुरुकुल से पूरा करना शुरू किया। परिणाम यह हुआ, कि कुछ ही वर्षों में यह विभाग भी आमदनी का अच्छा साधन बन गया।

प्रेस की उन्नति और पुस्तकों के प्रकाशन पर भी इस समय विशेष ध्यान दिया गया। जब शुरू शुरू में गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग की स्थापना हुई थी, तो अनेक प्रोफेसरों ने हिन्दी में उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे थे।

इनका प्रकाशन भी गुरुकुल की ओर से हुआ था। प्रोफेसर साठे जी, प्रो० महेशचरण सिन्हा व प्रो० गोवर्धन जी आदि के इन ग्रन्थों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। बाद में भी गुरुकुल के अनेक प्रोफेसरों ने हिन्दी में उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे, पर इनका प्रकाशन गुरुकुल की ओर से नहीं हुआ। पर इस समय अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थ गुरुकुल द्वारा प्रकाशित किये गये. जिन में विशेष रूप से उल्लेखनीय पं० चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार द्वारा लिखित 'बृहत्तर भारत' है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति किस प्रकार भारत से बाहर विदेशों में फैली उत्तर भारत के महत्त्वाकांक्षी राजपुत्रों ने किस प्रकार सुदूर पूर्व व उत्तर पश्चिमी एशिया में अपने नये उपनिवेश स्थापित किये, इस सबका वृत्तान्त बड़े सुन्दर रूप में इस ग्रन्थ में दिया गया है।

कुछ समय पूर्व 'गुरुकुल स्वाध्याय मंजरी' नाम से एक ग्रन्थ-माला का प्रारम्भ किया गया, जिसमें वैदिक स्वाध्याय सम्बन्धी एक पुस्तक प्रतिवर्ष प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई। अबतक (सन् १६४६ तक) इस मंजरी में अठारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रद्धानन्द स्मारक निधि के सदस्यों को ये पुस्तकें भेंट रूप में दी जाती हैं। इस निधि को जो भली भांति संगठित्त कर के भी इस समय यह प्रयत्न किया गया, कि गुरुकुल आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्त हो सके और उसे ऐसे दानियों का सहयोग

प्राप्त हो जाय जो प्रति वर्ष कम से कम दस रुपया गुरुकुल को दान देते रहें।

गुरुकुल की नई भूमि में इमारतें अब तक प्राय: तैयार हो चुकी थीं। पं० सत्यव्रत जी ने यह उद्योग भी विशेष रूप से किया, कि गुरुकुल भूमि सुंदर व रमणीक हो। उन्होंने सड़कों के दोनों ओर, छायादार वृक्ष लगवाने, आम आदि फलों की वाटिकायें लगवाने और फव्वारों व पार्कों द्वारा गुरुकुल को सुशोभित करने को बहुत महत्त्व दिया। इसी नीति का यह परिणाम हुआ, कि आज गुरुकुल हरिद्वार के क्षेत्र में सब से सुन्दर व रमणीक साधन हैं। इसकी शोभा मन को आकृष्ट करने वाली है।

इस समय आचार्य के पद पर पं० देवशर्मा जी कार्य कर रहे थे। पण्डित जी के त्याग और तपस्यामय जीवन का ब्रह्मचारियों पर बहुत प्रभाव था। उनके उदाहरण को सम्मुख रख कर अनेक विद्यार्थी देश और धर्म की सेवा के लिये तत्पर हुए। 'व्रताभ्यास' की पद्धति का गुरुकुल में सूत्रपात १९२५ में हो चुका था। पं० देवशर्मा जी ने मानसिक--शिक्षा की अपेक्षा व्रत-शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया। वे इस बात में विश्वास रखते थे, कि सदाचार, संयम और ब्रह्मचर्य का जीवन केवल अक्षराभ्यास की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। उनके प्रयत्न से गुरुकुल में सदाचार के वातावरण को विकसित करने में बहुत सहायता मिली।

दो वर्ष आचार्य के रूप में कार्य करके पं० देवशर्मा जी गुरुकुल से चले गये। उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया, और स्वामी अभयदेव बन गये। उनके बाद पं० सत्यव्रत जी ने मुख्याधिष्ठाता पद के साथ साथ आचार्य पद भी ग्रहण किया। पर एक वर्ष बाद स्वामी अभय देव जी पुनः गुरुकुल लौट आये। और आचार्य पद को संभाल लिया।

गुरुकुल के प्रबन्ध की नई व्यवस्था

स्वास्थ्य खराब रहने के कारण पं० सत्यव्रत जी ने सन् १९४२ में मुख्याधिष्ठाता पद से त्याग पत्र दे दिया। विद्या सभा के सम्मुख प्रश्न यह था कि उनके स्थान पर किस महानुभाव की नियुक्ति की जाय। अब तक गुरुकुल के प्रबन्ध, नियन्त्रण व संचालन के लिये दो प्रधान अधिकारी होते थे—मुख्याधिष्ठाता और आचार्य। पर अब विद्या सभा ने एक नई व्यवस्था का सूत्र पात किया। जो इस प्रकार थी—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में शिक्षा, शिक्षक वर्ग का नियन्त्रण तथा विद्यार्थियों के रहन सहन, पालन पोषण, आचार और गुरुकुल के इन सब कार्यों से सम्बधित अन्य प्रबन्ध के पूर्ण संचालन तथा नियन्त्रण के लिये एक आचार्य हो। उनकी नियुक्ति विद्या सभा द्वारा की जाय। गुरुकुल विश्वविद्यालय से सम्बन्धित समस्त शाखा गुरुकुलों का प्रबन्ध नियन्त्रण व संचालन भी आचार्य के अधीन रहे।

सभा की ओर से गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के शिक्षा तथा अन्य समस्त प्रबन्ध के निरीक्षण, नियन्त्रण

तथा निर्देश के लिये एक मुख्याधिष्ठाता हो, जिनकी नियुक्ति विद्यासभा द्वारा की जाय।

आचार्य के सुपुर्द जो काम दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त जायदाद, व्यवसाय आदि के लिये आवश्यकतानुसार एक या एक से अधिक प्रबन्धक नियत किये जावें, जो मुख्याधिष्ठाता के अधीन कार्य करें।

यदि किसी विषय पर मुख्याधिष्ठाता के निर्देश को आचार्य गुरुकुल के लिये हितकर न समझें, तो वे उस निर्देश को रोक कर और उसकी सूचना मुख्याधिष्ठाता को देकर तत्काल सभा-प्रधान की सेवा में आज्ञार्थ भेज दें। सभा-प्रधान का निर्णय माननीय हो।

इस नई व्यवस्था के अनुसार गुरुकुल में प्रबन्ध, शिक्षा आदि का प्रधान अधिकारी आचार्य को बना दिया गया। पर उन्हें कार्य में निर्देश देने, उनके कार्य का निरीक्षण करने तथा समय समय पर उन्हें मार्ग दिखाने व परामर्श देने के लिये एक मुख्याधिष्ठाता की व्यवस्था की गई, जिसका गुरुकुल में रहना आवश्यक नहीं है, जो गुरुकुल से बाहर रहते हुए आचार्य को परामर्श व निर्देश देकर गुरुकुल को उन्नति पथ पर ले जाने के लिये तत्पर रहता है।

इस व्यवस्था के अनुसार पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति को मुख्याधिष्ठाता नियत किया गया। आचार्य के पद पर स्वामी अभयदेव जी रहे। पं० इन्द्र जी गुरुकुल में अधिक समय नहीं रह सकते थे, और नई व्यवस्था के अनुसार

शिक्षा, प्रबन्ध आदि का प्रधान अधिकारी आचार्य को बनाया गया था, अतः स्वामी अभयदेव जी के हाथों में अब गुरुकुल का संचालन क्रियात्मक रूप से आगया था। पर इस नई स्थिति में स्वामी अभयदेव जी ने देर तक कार्य नहीं किया। नवम्बर, १९४२ में उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया, और पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार गुरुकुल के नये आचार्य नियत हुए। पं० बुद्धदेव जी वेदों के प्रकाण्ड पण्डित और आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक हैं। गुरुकुल को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने की उनमें उत्कट आकांक्षा थी। पर उन जैसे प्रतिभाशाली और साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति के लिये गुरुकुल के प्रबन्ध का कार्य विशेष रुचिकर व उपयुक्त नहीं हो सकता था। मई, १९४३ में उन्होंने आचार्य पद से त्याग पत्र दे दिया, और उनके स्थान पर पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति को नियुक्त किया गया।

अगस्त, १९४३ से वर्तमान समय तक पं० प्रियव्रत जी गुरुकुल के आचार्य पद पर कार्य कर रहे हैं। पर प्रबन्ध सम्बन्धी नई व्यवस्था के कायम होने के समय से ही मुख्याधिष्ठाता का कार्य पं० इन्द्र जी के सुपुर्द है। पं० इन्द्र जी गुरुकुल के प्रथम स्नातक हैं। गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुंशीराम जी के वे न केवल पुत्र हैं, अपितु प्रधान शिष्य भी हैं। आर्यजगत् में उनकी स्थिति बहुत ऊँची है। अपनी शिक्षा, विद्वत्ता, लेखनकला और वक्तृत्व शक्ति के कारण भारत के सार्वजनिक जीवन में उन्होंने बहुत गौरवमय स्थान प्राप्त कर लिया है। हिन्दी में उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जो

साहित्यक दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। पं० प्रियव्रत जी वेदों के गम्भीर विद्वान् हैं, अनेक वर्षों तक उन्होंने आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के अधीन वेदप्रचार का कार्य किया है कुछ वर्षों तक वे उपदेशक विद्यालय के आचार्य भी रहे हैं। वे उत्कृष्ट वक्ता हैं, और चरित्र बल भी उन में बहुत है। गुरुकुल के वर्तमान दोनों प्रमुख पदाधिकारी इस संस्था के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। इसीलिये गुरुकुल का कार्य सन्तोषजनक रीति से चल रहा है, और यह विश्वविद्यालय उन्नति के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर हो रहा है।

स्वतन्त्र भारत में गुरुकुल

१५ अगस्त, १९४७ को भारत ब्रिटिश शासन से मुक्त हुआ। ऋषि दयानन्द ने स्वराज्य का जो आदर्श जनता के सम्मुख रखा था। अन्त में उसे प्राप्त करने में भारतीय लोग सफल हुए। गुरुकुल का विकास एक स्वतन्त्र शिक्षणालय के रूप में हुआ था। इसके संचालक विदेशी सरकार से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे। जिन आदर्शों को सम्मुख रखकर गुरुकुल की स्थापना की गई थी, वे विदेशी सरकार के नियन्त्रण में इस संस्था को रखकर पूरे नहीं किये जा सकते थे। अतः यह सर्वथा उचित था, कि गुरुकुल सरकार से व उसके द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखे।

पर स्वराज्य प्राप्ति के बाद परिस्थिति बदल गई। अब भारत की सरकार भारतीयों के हाथ में आगई। अब

भारत की सरकार भारतीयों के हाथ में आ गई। अब इस बात की आवश्यकता नहीं रही, कि सरकार से किसी प्रकार का सम्पर्क न रखा जावे। इस लिये १६४७ में गुरुकुल की ओर से यह उद्योग प्रारम्भ हुआ, कि इस राष्ट्रीय विश्वविद्यालय द्वारा दी गई विविध उपाधियों को भारतीय व प्रान्तीय सरकारें स्वीकृत करें, व अन्य विश्वविद्यालय भी यहां की डिग्रियों को स्वीकृत कर इसे अपने समकक्ष मानलें। इस कार्य में गुरुकुल को पूरी सफलता हुई। यह सर्वथा उचित भी था, क्योंकि यहां शिक्षा का स्टैण्डर्ड ब्रिटिश युग के सरकारी विश्वविद्यालयों के मुकाबले में किसी भी प्रकार कम न था।

१५-३-४८ को हिमाचल प्रदेश की सरकार ने गुरुकुल की उपाधियों को इस प्रकार स्वीकृत किया—

विद्याधिकारी	हाईस्कूल या मैट्रिकुलेशन के बराबर
अलंकार	बी. ए. के बराबर
वाचस्पति	एम. ए. के बराबर

२४, मई १६४८ को बिहार की प्रान्तीय सरकार ने भी १६४७ तक जिन व्यक्तियों ने गुरुकुल विश्वविद्यालय से विविध डिग्रियां प्राप्त कीं, उनकी अधिकारी डिग्री को मैट्रिकुलेशन के, अलंकार डिग्री को बी. ए. के और वाचस्पति डिग्री को एम. ए. के बराबर स्वीकृत किया।

५ जुलाई, १६४८ को उत्तर प्रदेश (यू. पी. व संयुक्त प्रान्त) की सरकार ने गुरुकुल की अलंकार डिग्री को बी. ए. के बराबर स्वीकृत कर लिया।

६ मई, १६४६ को भारत की केन्द्रीय सरकार ने सामयिक

रूप से गुरुकुल के स्नातकों को सरकारी विश्वविद्यालयों के ग्रेजुएट के समकक्ष मान लिया। स्थिर रूप से गुरुकुल की डिग्री को स्वीकृत कर लेने का प्रश्न अभी विचाराधीन है।

१३ अक्टूबर, १९४९ को पंजाब की सरकार ने गुरुकुल विश्वविद्यालय की अलंकार डिग्री को बी. ए. के बराबर स्वीकृत कर लिया।

१५ दिसम्बर, १९४९ को बम्बई प्रान्त की सरकार ने भी गुरुकुल की अलंकार डिग्री को बी. ए. के बराबर मान लिया।

अब भारत की विविध सरकारें गुरुकुल के अलंकार उपाधि से विभूषित स्नातकों को अपनी विविध नौकरियों के लिये वही अवसर देने को उद्यत हैं जो सरकारी विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों को प्राप्त हैं। यह गुरुकुल की भारी विजय है।

अनेक विश्वविद्यालयों ने भी गुरुकुल की डिग्री को अपनी डिग्री के समकक्ष मानना स्वीकार किया। आगरा यूनिवर्सिटी ने २६ जुलाई, १९४७ को एक प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकार किया, कि गुरुकुल के अलंकार परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थी बी. ए. परीक्षा उत्तीर्ण किये बिना ही संस्कृत, हिन्दी, पाश्चात्य-दर्शन, अर्थशास्त्र और राजनीति विषयों में एम. ए. परीक्षा में बैठ सकते हैं। यही बात हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने संस्कृत और हिन्दी विषयों के लिये स्वीकार की। अन्य विविध यूनिवर्सिटियां भी इस प्रश्न पर विचार कर रही हैं। इसमें

सन्देह नहीं, कि अब वह समय आगया है, जब गुरुकुल को शिक्षा के क्षेत्र में अपना समुचित स्थान प्राप्त हो जावेगा।

गुरुकुल और विदेशी विश्वविद्यालय

भारत में विदेशी सरकार होने के कारण यहां की ब्रिटिश सरकार ने और सरकार द्वारा स्थापित व स्वीकृत विश्वविद्यालयों ने गुरुकुल की डिग्री को स्वीकृत नहीं किया था। ब्रिटिश साम्रज्य में विद्यमान विदेशी विश्वविद्यालय भी यहां की डिग्री को मान नहीं देते थे। पर ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली आदि देशों के विश्वविद्यालयों ने गुरुकुल को यथोचित मान दिया और यहां की डिग्री को स्वीकृत किया। गुरुकुल के अनेक स्नातक उच्च शिक्षा के लिये विदेशों में गये। वहां उन्हें सीधा डाक्टरेट परीक्षा के लिये दाखिल कर लिया गया। पेरिस, बर्लिन आदि के विश्वविद्यालय ब्रिटिश साम्राज्य में विद्यमान किसी भी विश्वविद्यालय की अपेक्षा अधिक विशाल व सम्माननीय शिक्षाकेन्द्र हैं। विद्वत्ता के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उनका स्थान किसी भी प्रकार आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, लण्डन आदि ब्रिटिश विश्वविद्यालयों से कम नहीं है। उन्होंने गुरुकुल के स्नातकों का स्वागत किया, और अनेक स्नातक उनसे उच्चतम डिग्रियां लेकर भारत लौटे। इन स्नातकों के नाम निम्न लिखित हैं—

(१) डा०प्राणनाथ विद्यालंकार—इन्होंने वीएना यूनिवर्सिटी से पी०एच०डी०की परीक्षा उत्तीर्ण की।

(२) डा० ईश्वरदत्त विद्यालंकार—इन्होंने म्यूनिच यूनिवार्सिटी से पी० एच० डी० किया।

(३) श्री० विनायक राव विद्यालंकार ने इंगलैण्ड से बार-एट-लॉ की पदवी प्राप्त की है।

(४) डा० सत्यकेतु विद्यालंकार—इन्होंने पेरिस यूनिवार्सिटी से डी० लिट० की डिग्री ससम्मान प्राप्त की।

(५) डा० धीरेन्द्र विद्यालंकार—इन्होंने म्यूनिच से पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

(६) डा० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार—इन्होंने पेरिस यूनिवर्सिटी से डी० लिट० की डिग्री प्राप्त की।

(७) डा० बलराम आयुर्वेदालंकार—इन्होंने म्यूनिच यूनिवार्सिटी से एम० डी० की डिग्री प्राप्त की।

(८) डा० नारायणदत्त आयुर्वेदालंकार—इन्होंने म्यूनिच यूनिवार्सिटी से एम०डी० की डिग्री प्राप्त की।

(९) डा० धर्मानन्द आयुर्वेदालंकार—इन्होंने रोम और म्यूनिच यूनिवर्सिटियों से एम० डी० की डिग्रियां प्राप्त की।

(१०) श्री नरदेव विद्यालंकार ने म्यूनिच से फोटोग्राफी में डिप्लोमा प्राप्त किया है।

प्रसन्नता की बात है, कि अब भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भारत की विविध सरकारों तथा अनेक विश्वविद्यालयों ने भी गुरुकुल की उपाधियों को स्वीकार कर लिया है।

देश का विभाजन और गुरुकुल

अगस्त, १९४७ में भारत को दो विभागों में विभक्त कर पाकिस्तान के पृथक् राज्य का निर्माण किया गया। पाकिस्तान का निर्माण धर्म के आधार पर हुआ था। मुसलिमलीग चाहती थी, कि मुसलमानों का अपना पृथक् राज्य हो, जिस में शासन मुसलिम धर्म के अनुरूप रहे। इसके लिये बहुतसे मुसलमान नेता यह भी चाहते थे, कि पाकिस्तान में हिन्दू व सिक्ख न रहें। परिणाम यह हुआ, कि पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त और बलोचिस्तान से लाखों की संख्या में हिन्दुओं को भारत आना पड़ा। इस समय जो हिन्दू व सिक्ख पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आये, उनकी संख्या साठ लाख के लगभग है। इनके अतिरिक्त लाखों हिन्दू व सिक्ख धर्मान्ध मुसलमानों द्वारा कतल किये गये। सम्पत्ति का जो विनाश इस समय हुआ, उसका तो अंदाज कर सकना भी सुगम नहीं है।

पश्चिमी पाकिस्तान में सैकड़ों आर्यसमाज थीं। इस प्रदेश में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की करोड़ों की सम्पत्ति थी। वह सब सम्पत्ति पाकिस्तान में ही रह गई। गुरुकुल कांगड़ी की भी बहुत सी सम्पत्ति इस प्रदेश में थी, जिस में से मुख्य निम्न लिखित हैं—

(१) शीशमहल भूमि (लाहौर में) मूल्य १६,१०,००० रु०
(२) नौलखा भूमि (लाहौर में) ४,१०,००० रु०
(३) शुजाबाद ५,०००

सर्वयोग २०,२५,००० रु०

इस भूसम्पत्ति में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व गुरुकुल का रुपया सम्मिलित रूप से लगा हुआ था। बीस लाख से अधिक कीमत की इस सम्पत्ति में आधे के लगभग रुपया गुरुकुल का था। भारत के विभाग से गुरुकुल को दस लाख रुपये से अधिक की क्षति उठानी पड़ी।

इसके अतिरिक्त, गुरुकुल की एक महत्त्व पूर्ण शाखा पश्चिमी पाकिस्तान के क्षेत्र में थी। मुलतान गुरुकुल बहुत सम्पन्न तथा समृद्ध दशा में था। इस गुरुकुल के पास कुल मिला कर २६६ बीघा (पक्के) भूमि थी, और इमारत की कीमत भी लाख से ऊपर थी।

गुरुकुल का भावी रूप

अब से पचास साल पहले जिस गुरुकुल का बीजारोपण किया गया था, वह अब एक विशाल वृक्ष के रूप में विकसित हो चुका है। उसकी छाया में बैठ कर अब सैंकड़ों विद्यार्थी विद्यारूपी अमृत का पान कर रहे हैं। उसकी कीर्ति न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी फैल चुकी है। वेद,

शास्त्र, संस्कृत, प्राच्यज्ञान, प्राचीन इतिहास आदि विषयों के अध्ययन के लिये गुरुकुल भारत का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व प्रसिद्ध केन्द्र है। गुरुकुल द्वारा प्रदान की जाने वाली उपाधियां अब सरकार द्वारा मान्य हो चुकी हैं। पर इस संस्था का विकास अभी पूर्ण नहीं हुआ है। अभी इसने उन्नति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ना है। यह प्रयत्न किया जारहा है, कि गुरुकुल को एक ऐसे विश्वविद्यालय का रूप दे दिया जाय, जिसे स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय सरकार द्वारा चार्टर प्राप्त हो, जिस की वही स्थिति हो जो काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ की मुसलिम यूनिवर्सिटी की है। सदाचार, ब्रह्मचर्य, आश्रम-निवास, सरल व तपस्यामय जीवन, वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन आदि गुरुकुल की जो विशेषतायें हैं, उन्हें पहले के समान ही कायम रखा जाय। पर अब स्वतन्त्र भारत में सरकार से असहयोग रखने की नीति समय के अनुकूल नहीं है। अतः गुरुकुल को राष्ट्रीय सरकार द्वारा नियमित व स्वीकृत विश्वविद्यालय के रूप में परिणत करना सर्वथा उचित है। इसी बात को दृष्टि में रख कर एक बिल का मसविदा तैयार कर लिया गया है, जिसे शीघ्र ही उत्तर प्रदेश (यू०पी०) की व्यवस्थापिका सभा में पेश किया जायगा, और वह समय दूर नहीं है, जब गुरुकुल एक बाकायदा चार्टर्ड यूनिवर्सिटी बन जायगा।

बदली हुई परिस्थितियों में अब यह भी निश्चय कर

लिया गया है, कि गुरुकुल के महाविद्यालय विभाग में ऐसे छात्रों को भी प्रविष्ट किया जाय, जिन्होंने शुरु में गुरुकुल में शिक्षा न प्राप्त की हो, पर जो अन्य दृष्टियों से गुरुकुल में प्रविष्ट होने के योग्य हों। आयुर्वेद महाविद्यालय में तो पिछले कुछ वर्षों से बाहर के विद्यार्थी प्रवेश पा सकते थे। इस समय आयुर्वेद महाविद्यालय में २५ विद्यार्थी ऐसे हैं, जो गुरुकुल की विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण नहीं हैं। अब २६ जनवरी, १९५० को विद्यासभा ने यह स्वीकार कर लिया है, कि गुरुकुल के वेद व साधारण महाविद्यालयों में भी बाहर के विद्यार्थी प्रविष्ट हो सकें। आयुर्वेद महाविद्यालय के लिये तो यह भी नियम कर दिया गया है, कि उस में ऐसे विद्यार्थी भी प्रविष्ट हो सकें, जो गुरुकुल के आश्रम में निवास न करते हों। अब गुरुकुल उस मार्ग पर चल पड़ा है, जिस से अधिक व्यापक क्षेत्र में इसकी शिक्षा से विद्यार्थी लोग लाभ उठा सकेंगे।

महात्मा मुंशीराम जी की यह प्रबल इच्छा थी, कि गुरुकुल में एक शिल्प महाविद्यालय भी खुले, जिससे शिल्प का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त कर गुरुकुल के विद्यार्थी स्वतन्त्र व स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सकें। गुरुकुल के अधिकारी इस प्रयत्न में हैं, कि अब शीघ्र ही एक शिल्प महाविद्यालय भी यहां खोल दिया जाय।

सिंहावलोकन

सन् १९०० से १९५० तक ५० वर्षों में गुरुकुल का किस प्रकार विकास हुआ, इस का संक्षिप्त विवरण हम यहां समाप्त करते हैं। हमने जान बूझ कर बहुत सी बातों को छोड़ दिया है। संस्थाओं में संघर्षों का होना बिलकुल स्वाभाविक है। जहां दस आदमी भी रहेंगे, परस्पर मतभेद होंगे, संघर्ष भी होंगे। फिर जहां सार्वजनिक क्षेत्र में एक नवीन आदर्श को सम्मुख रख बहुत से महानुभाव काम कर रहे हों, यह कैसे सम्भव है कि परस्पर मतभेद व संघर्ष न हों। इन संघर्षों का उपयोग है। जब तक आदर्श, सिद्धान्त और क्रिया-विधि के सम्बन्ध में लोगों में मतभेद न हो, उन्नति असम्भव है। गुरुकुलों में भी विविध महानुभावों में बहुत से मतभेद रहे, अनेक बार संघर्ष हुये। पर इसमें सन्देह नहीं, कि सब का लक्ष्य गुरुकुल की उन्नति रहा। इसी का परिणाम है कि गुरुकुल आज इस उन्नत दशा को पहुँच सका है।

इसके साथ ही जिन लोगों के प्रयत्न से गुरुकुल अपनी वर्तमान दशा को पहुँचा है, उन सब का उल्लेख करना असम्भव था। हमने केवल उन महानुभावों का नाम दिया है, जो प्रमुख रूप से जनता के सम्मुख रहे। पर उनके अतिरिक्त कितने ही महानुभाव हैं जिन्होंने गुरुकुल के लिए अपना तन, मन, धन और सब कुछ अर्पण कर

दिया। मुंशी रामसिंह जी गुरुकुल खुलने के कुछ वर्ष बाद यहां आये, उनके पास जो धन, सम्पत्ति थी सब गुरुकुल के लिये दान करदी और भोजन मात्र पर गुरुकुल की सेवा प्रारम्भ की। उन्होंने कोई चालीस वर्ष तक गुरुकुल की सेवा की। लाला बीरबल जी और लाला चिरञ्जीलाल जी पटवारी ने भण्डारी के रूप में और गुरु रामजीलाल जी ने गोशालाध्यक्ष के रूप में गुरुकुल की जो सात्विक सेवा की उसे कौन आंखों से ओझल कर सकता है। लाला लब्भूराम जी नैय्यड़ ने गुरुकुल के लिये धन एकत्रित करने में जो कार्य किया, वह वस्तुतः अद्भुत है। यदि उन जैसे दस महानुभाव और निकल आयें तो गुरुकुल आर्थिक चिन्ता से सदा के लिये मुक्त हो जावे। भाई टेकचन्द नागिया ने ५० हजार रुपया दान देकर गुरुकुल की इमारत-निधि को जहां बड़ी सहायता पहुँचाई, वहां प्रतिवर्ष एक विद्यार्थी सर्वथा मुफ्त खाने पहिनने का व्यय भी न लेकर दाखिल करने की व्यवस्था की। सेठ रग्घुमल के बाद गुरुकुल के दानियों में भाई जी का ही सर्वोच्च स्थान है। लाला नन्दलाल, श्रीयुत ज्ञानचन्द मेहता, डिप्टी रघुवरदयाल, पं० महानन्द सिद्धान्तालंकार श्री देवराज जी सेठी और पं० दीनदयालु शास्त्री ने गुरुकुल के आन्तरिक प्रबन्ध को संभालने में बड़ा भारी कार्य किया। गुरुकुल का कार्यालय बहुत ही सुव्यवस्थित रूप

में है। उसे उन्नत करने का सारा श्रेय लाला मुरारीलाल जी और पं० अमरनाथ सप्रू को है। हम कहां तक नाम लिखें। गुरुकुल कार्यकर्त्ताओं की दृष्टि से बड़ा सौभाग्य-शाली रहा है। उसके प्रत्येक अंग पर किसी न किसी स्वार्थ त्यागी कर्मचारी के अनथक परिश्रम और लगन की छाप है।

गुरुकुल को स्थापित हुये आज ५० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ३४ विद्यार्थियों छोटी सी पाठशाला से शुरु होकर अब वह एक विश्वविद्यालय बन चुका है, जिस में एक हजार के लगभग विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। उसके अन्तर्गत चार महाविद्यालय और दस विद्यालय हैं। गुरुकुल की उन्नति सचमुच आश्चर्यजनक है। सरकार से न केवल किसी प्रकार की सहायता न ले कर, अपितु सरकारी शिक्षा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रख राष्ट्रीय शिक्षणालय के रूप में गुरुकुल कांगड़ी को जितने सफलता मिली है, उतनी अन्य किसी संस्था को नहीं मिली। गुरुकुल की स्थापना आर्यसमाज ने की थी। आर्य-समाज के शिक्षा के क्षेत्र में जो विशेष आदर्श और सिद्धान्त हैं उन्हें क्रिया में परिणत कर गुरुकुल ने बड़ा भारी कार्य किया है। वैदिक-धर्म, भारतीय-सभ्यता और आर्य-संस्कृति के रङ्ग में रङ्गे हुए उच्च शिक्षित नागरिक उत्पन्न कर गुरुकुल ने जहां आर्यसमाज की बड़ी सेवा

की है, वहां सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का विचार भी देश के सम्मुख रखा है।

गुरुकुल स्थापित करने में 'आर्य प्रतिनिधि सभा' का मुख्य उद्देश्य वैदिक-साहित्य का अनुशीलन तथा वैदिक धर्म का पुनरुज्जीवन था। इस के लिए जो कार्य गुरुकुल ने किया है, वह ध्यान देने योग्य है। आज से ३० वर्ष पूर्व आर्यसमाज में एक भी ऐसा विद्वान् नहीं था, जो वेद वेदांग को पढ़ा सके। गुरुकुल में इन विषयों को पढ़ाने के लिए जब अध्यापकों की आवश्यकता हुई तो सनातनी पण्डित रखे गये। श्री गुरु काशीनाथ जी, पं० सूर्यदेव शर्मा और पं० योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य गुरुकुल में सबसे पहिले वेद वेदाङ्ग के अध्यापक थे। ये लोग कट्टर सनातनी थे और गुरुकुल में रहते हुए भी मूर्ति-पूजा करते थे। ढूँढने से भी आर्यसमाज में कोई भी ऐसा पण्डित उस समय में नहीं मिलता था, जो वेद ब्राह्मणग्रन्थ व दर्शनों का उच्च कोटि का अध्यापन करा सके। कुछ दिनों के लिए पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ गुरुकुल में रहे, पर भयंकर रोग से पीड़ित होने के कारण वे देर तक न टिक सके। पर गुरुकुल के प्रयत्न से आज वेद वेदाङ्गों के पण्डितों की कमी नहीं रही है। आज न केवल गुरुकुल कांगड़ी में, अपितु, बहुत सी आर्य संस्थाओं में इन विषयों के पढ़ाने के कार्य गुरुकुल के स्नातक कर रहे हैं। आज आर्य समाज में जितने भी वैदिक विद्वान् हैं उन में से कम से कम तीन चौथाई गुरुकुल की उपज हैं। पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर गुरुकुल के स्नातक नहीं हैं पर उन्होंने प्रायः

सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान गुरुकुल में रह कर प्राप्त किया है। गुरुकुल के स्नातकों में पं० जयदेव जी विद्यालङ्कार ने चारों वेदों का भाष्य कर आयसमाज की जो महान् सेवा की है उसे कौन भूल सकता है। ऋषि दयानन्द के बाद पं० जयदेव जी पहिले विद्वान् हैं जो चारों वेदों के पण्डित हैं और वेद भाष्य का कार्य समाप्त कर अब अन्य आर्षग्रन्थों के भाष्य में लगे हैं।

गुरुकुल के वेदोपाध्याय पं० विश्वनाथ विद्यालङ्कार आर्य-समाज के सब से गम्भीर वैदिक विद्वान् हैं। वेदों का जितना विस्तृत और विवेचनात्मक अध्ययन उन्होंने किया है उतना और शायद ही किसी ने किया हो। पं० देवशर्मा विद्यालङ्कार की 'वैदिक विनय' जिस ने पढ़ी है उस ने उस की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पं० धर्म्मदेव विद्यावाचस्पति, पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति, प० धर्म्मदेव वेदवाचस्पति, पं० भगवद्दत्त जी वेदवाचस्पति पं० देवराज जी आदि कितने ही स्नातकों की वेद विषयक पुस्तकें आर्यसमाज के सम्मुख आ चुकी हैं। अनेक स्नातक वेद विषयक ग्रन्थ लिखने में व्यापृत हैं। गुरुकुल का प्रत्येक विद्यार्थी लगभग २००० मन्त्र गुरुकुल में पढ़ लेता है। इस से उन में वेदों को समझने की अच्छी योग्यता उत्पन्न हो जाती है। जो विद्यार्थी वेद महाविद्यालय में पढ़ते हैं, उन की वैदिक योग्यता तो और भी हो जाती है। आधुनिक ज्ञान विद्वानों तथा नवीन विवेचनात्मक शैली से परिचित होने के कारण गुरुकुल के

स्नातक वैदिक अनुसन्धान का कार्य बड़ी उत्तमता के साथ कर सकते हैं।

आर्यसमाज के प्रचार के लिए भी गुरुकुल के स्नातकों ने बड़ा कार्य किया है, प्रतिनिधि सभा के अनेक प्रसिद्ध उपदेशक गुरुकुल के स्नातक हैं। पं० बुद्धदेव जी, पं० प्रियव्रत जी, पं० यशपाल जी आदि स्नातक प्रचार कार्य जिस सफलता के साथ कर रहे हैं उस से पंजाब के आर्यबन्धु भलीभांति परिचित हैं। दक्षिण भारत में वैदिक धर्म का सन्देश पं० धर्म्मदेव जी, पं० केशवदेव जी, पं० देवेश्वर जी आदि स्नातक ही ले गये हैं। दक्षिण अफ्रीका, फिजी आदि विदेशों में पं० सत्यपाल जी, पं० ईश्वरदत्त जी, पं० अमीचन्द जी आदि कितने ही स्नातक वैदिक धर्म का प्रचार कर चुके हैं और कर रहे हैं। गुरुकुल के ६० से अधिक स्नातक इस समय आर्यसमाज की सेवा में हैं और उस के विविध क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो सेवा गुरुकुल के स्नातकों ने की है उस की सर्वत्र प्रशंसा हुई है। इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विविध विषयों पर गुरुकुल के स्नातकों ने मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं। गुरुकुल के दो स्नातकों को हिन्दी साहित्य की ओर से १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक भी प्राप्त हो चुका है। पं० सत्यकेतु विद्यालंकार ने 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' पर और पं० जयचन्द्र 'विद्यालंकार ने भारतीय इतिहास की रूप रेखा' पर यह पुरस्कार प्राप्त किया है। डा० प्राणनाथ

विद्यालंकार के ग्रन्थ हिन्दी जगत् में अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। श्री हरिदत्त वेदालंकार ने हिन्दू परिवार का इतिहास तथा हिन्दू विवाह का विकास नामक दो पुस्तकें लिखी है, जिन पर बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा बारह बारह सौ के दो पारितोषिक मिले हैं। पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार का 'बृहत्तर भारत' ग्रन्थ अपने विषय का अनुपम व प्रामाणिक ग्रन्थ है। पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने निरुक्त का जो विस्तृत भाष्य किया है, उसकी भारत भर के विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। निरुक्त पर सम्भवतः वह सब से उत्तम ग्रन्थ है। पं० चन्द्रगुप्त वेदालंकार हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यक हैं। उनकी गल्पें बहुत उच्चकोटि की मानी जाती हैं। पं० वागीश्वर जी, पं० वंशीधर विद्यालंकार, पं० निरंजनदेव और पं० सत्यपाल उन्मुख अच्छे कवि हैं, और हिन्दी के कवि समाज में अच्छी स्थिति रखते हैं। आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थों को लिखने में श्री० जयदेव विद्यालंकार, श्री० विद्याधर विद्यालंकार, श्री० अत्रिदेव विद्यालंकार और श्री० रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से से स्नातकों ने हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में बहुमूल्य सेवा की है। गुरुकुल के कम से कम २५ फी सदी स्नातक अच्छे लेखक हैं और अपने लेखों व ग्रन्थों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

पत्र-सम्पादन के क्षेत्र में भी गुरुकुल के स्नातकों ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है । पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० सत्यदेव विद्यालंकार, पं० रामगोपाल विद्यालंकार, पं० भीमसेन विद्यालंकार, पं० अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, पं० कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, पं० सत्यकाम विद्यालंकार पं० वेदव्रत वेदालंकार, पं०परम विद्यालंकार श्री आनन्द जी आदि कितने ही स्नातक विविध समाचार पत्रों के सम्पादन कार्य में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। अभिप्राय यह है कि हिन्दी के सभी साहित्यिक क्षेत्रों में स्नातक लोग सफलता के साथ कार्य कर रहे हैं ।

गुरुकुल के अब तक ५१७ स्नातक निकले हैं । ये सभी विविध क्षेत्रों में सफलता पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भारत में बेकारी की जो घोर समस्या है वह अब सरकारी यूनिवर्सिटी के स्नातकों के सन्मुख भी बड़ी उग्रता के साथ उपस्थित है । गुरुकुल का स्नातक नौकरी के उद्देश्य से शिक्षा प्राप्त नहीं करता । उसे शुरू से ही स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया जाता है । यही कारण है, कि गुरुकुल से निकल कर वह अपनी परिस्थितियों और सामर्थ्य के अनुसार अपने लिए मार्ग ढूंढ निकालने में सफल हो जाता है ।

गुरुकुल के सन्मुख उन्नति का विशाल क्षेत्र खुला पड़ा है । अनेक योजनाएं स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय से

गुरुकुल के सन्मुख विद्यमान हैं। शिल्प महाविद्यालय (Industrial College) के लिए २० हजार रुपया प्राप्त भी हो चुका है। कृषि के लिए भी २५ हजार रुपये गुरुकुल के पास मौजूद हैं। वैदिक-साहित्य और इतिहास की खोज के लिये भी कुछ रकमें आई हैं। पर ये कार्य तभी प्रारम्भ हो सकते हैं, जब इनके लिए धन की यथोचित व्यवस्था हो। आशा है, आर्यसमाज की सहानुभूति और सहायता से गुरुकुल स्वामी श्रद्धानन्द जी के इन असिद्ध स्वप्नों को पूर्ण करने में सफल हो सकेगा।

आयुर्वेद महाविद्यालय गुरुकुल में देर से कायम हो चुका है। आयुर्वेद की शिक्षा यहां इस ढंग से दी जाती है कि प्राचीन आयुर्वेद के साथ २ नवीन चिकित्सा का ज्ञान भी ब्रह्मचारियों को हो जाता है। आयुर्वेद तथा एलोपैथी के तुलनात्मक ज्ञान से विद्यार्थियों को दोनों विज्ञानों में जो कुछ भी उत्तम है उसका उपयोग करने का अवसर प्राप्त होता है। आयुर्वेद के क्रियात्मक-ज्ञान के लिये गुरुकुल की तरफ से एक बाह्य-चिकित्सलय (Out door Hospiral) भी खुला हुआ है जिस में गुरुकुल के आस पास के गांवों के रोगी आकर लाभ उठाते हैं इस से जहां गुरुकुल को मनुष्य जाति की सेवा का अवसर प्राप्त होता है वहां आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों को रोगी देखने का और अपने अध्ययन को क्रियात्मक

रूप देने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है। गुरुकुल के इस चिकित्सालय से ३०-४० रोगी तो प्रति दिन लाभ उठाते ही हैं, और कभी कभी रोगियों की संख्या १५०-२०० तक प्रतिदिन पहुँच जाती है।

इस प्रकार गुरुकुल का चौमुखा विकास हो रहा है। गुरुकुल मुख्यतया आर्य जाति के सेवक उत्पन्न कर रहा है, परन्तु साथ ही अपने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करने में भी कोई कसर बाकी नहीं रख रहा। सन् १९३५ में विद्या-सभा बनने के बाद से गुरुकुल का संचालन गुरुकुल के स्नातकों के ही हाथ में आगया है, और उस समय से गुरुकुल के मुख्य पदाधिकारी गुरुकुल के स्नातक ही रहे हैं। इसमें संदेह नहीं, कि स्नातकों के हाथ में गुरुकुल की उन्नति निरन्तर होती रहेगी।

—:o:—

ब्राह्मण की गौ—लेखक श्री अभय विद्यालंकार। सच्चे ब्राह्मण की वाणी में क्या जादू भरी शक्ति होती है, वह इस पुस्तक में पाठक देखेंगे। एक महाबली राजा के मुकाबले में एक गरीब ब्राह्मण की वाणी को दिखाया गया है, जिसमें कि अन्त में उस ब्राह्मण की वाणी की ही अनायास विजय होती है। महात्मा गांधी ने 'ब्राह्मण की गौ' को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़कर इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वेद के पवित्र उपदेशों की यह स्वाध्याय पुस्तक (अथर्ववेद ब्रह्मगवी सूक्त की व्याख्या) प्रत्येक सज्जन को अवश्य पढ़नी चाहिये। मूल्य ॥)

सध्या रहस्य (प्रथम संकरण)—लेखक प्रोफेसर विश्वनाथ विद्यालंकार उपासना का प्रत्येक धर्म में विशेष महत्व है। सृष्टि की सबसे प्राचीन और सबसे नवीन वेदोक्त उपासना का आनन्द निराला ही है। यदि आप सन्ध्या के गूढ़ रहस्य को हृदयंगम करके इस अनिर्वचनीय आनन्द का आस्वादन करना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये मूल्य २)

योगेश्वर कृष्ण (दूसरा संस्करण)—मूल्य ४) बढ़िया चिकने कागज पर अभी छपा है। श्री कृष्ण के प्राप्त जीवन चरित्रों में यह सब से प्रामाणिक जीवन-चरित्र है। अमर जीवन के दिव्य संदेश को सुनाने वाले इस महान पुरुष की जीवन से मानव-समाज को सदा उद्बोधन मिलता रहा है। आप भी आज ही मंगाकर पढ़िये। लेखक–श्री चमूपति एम. ए.

मिलने का पता—

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय, हरिद्वार।

सोम सरोवर—लेखक श्री चमूपति एम० ए०। यह ग्रन्थ सामवेद के पवमान पर्व का सुललित भाष्य है। इस पुस्तक का पाठ पाठक के हृदय में कभी अद्भुत तरंग, कभी वीर तरंग और कभी शान्त तरंग प्रवाहित करके हृदय को आलोकित कर देता है। इन्हीं तरंगों से अठखेलियां करता हुआ भक्त अपने प्रियतम उपास्यदेव के ध्यान में मग्न हो जाता है। सामवेद भक्तों के लिये भक्ति का स्रोत है। पाठक भक्तिरस के इस झरने का पयःपान करें, निश्चिन्तता से अध्ययन करें, मनन करें। पुस्तक की भाषा सजीव है, बढ़िया कागज़, छपाई, सफाई उत्तम है मूल्य सजिल्द २), अजिल्द १॥)

वेद गीताञ्जली—[illegible] ढाइसौ के लगभग वेदमन्त्र, उनका अर्थ, और उन पर एक-एक सुन्दर हिन्दी कविता है। कविता मधुर स्वर में प्रार्थना के समय गाने योग्य है अतः इनका स्थान २ पर प्रचार भी हो रहा है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त गिरिजा शंकर मिश्र, सन्तप्रसाद वर्मा, श्री चमूपति, प्रियहंस, परमहंस, निरीह व निश्चिन्त आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों ने इस गीताञ्जली के संकलन में सहयोग दिया है। पुस्तक की छपाई सफाई बढ़िया है। मूल्य २)

धर्मोपदेश (तीन भाग)—यह पुस्तक श्री स्वामी श्रद्धानन्द महाराज के उच्च, गम्भीर आत्मा को उठाने वाले उपदेशों का संग्रह है। संग्रहकर्ता हैं श्री स्वामी जी के अनन्य भक्त लाला लब्भूराम नैय्यड़। मूल्य प्रथम भाग १।), द्वितीय भाग १) तृतीय भाग १॥)

मिलने का पता—

प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी-विश्वविद्यालय, हरिद्वार।